भाव विज्ञान

BHĀVA VIJÑĀNA

पोन्नूरमलै (पोन्नूरपर्वत) पर विराजित भूगर्भ से प्राप्त
भगवान महावीर जिनप्रतिमा

वीर निर्वाण संवत् - 2534
फाल्गुन कृष्णा पक्ष वि.सं. 2064 मार्च 2008

वर्ष : प्रथम अंक : तृतीय

मूल्य : 10/-

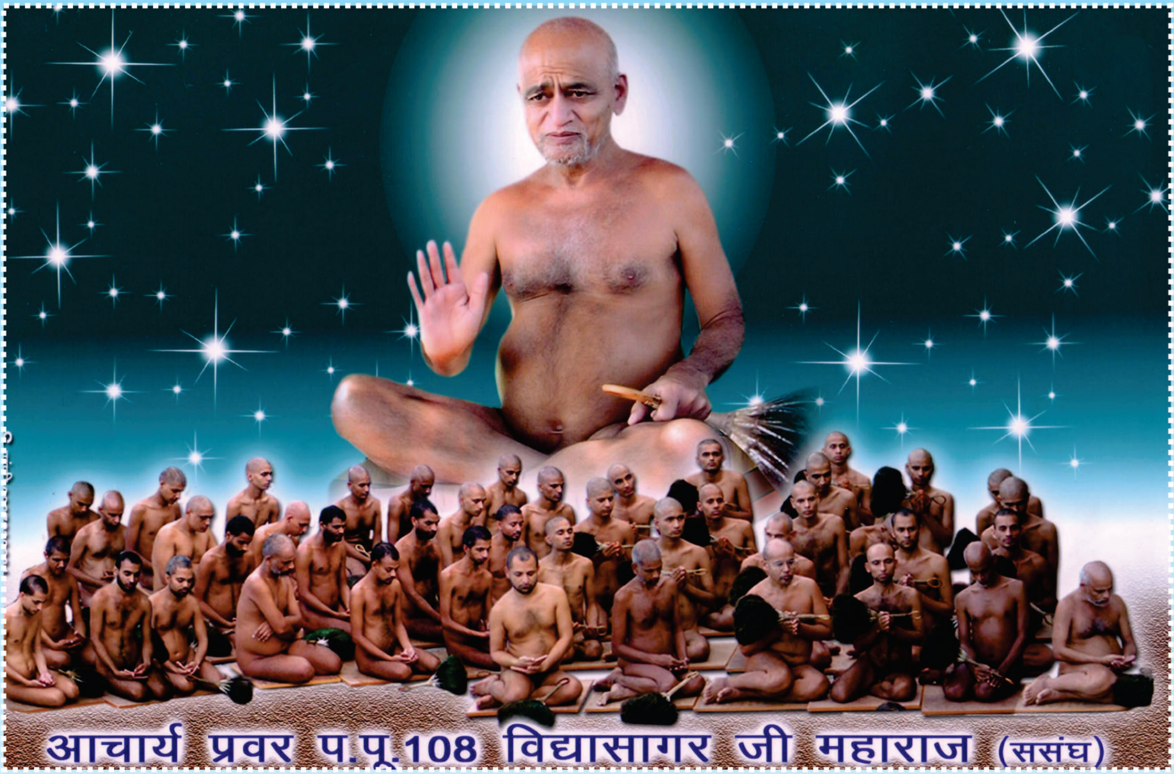

- बहुत नहीं, बहुत बार पढ़ने से ज्ञान होता है।
- बार-बार पढ़ने से ज्ञान में रस आने लगता है यानि ज्ञान अनुभव में आ जाता है।
- स्वस्थ ज्ञान का नाम ध्यान है एवं अस्वस्थ ज्ञान का नाम विज्ञान है।
- ज्ञान स्वयं में सुखद है परंतु उसका मद घातक बन जाता है।
- ज्ञानी का मद अज्ञानियों के लिये मद का कारण बनता है।
- ज्ञान की शोभा नम्रता से है, वस्तुत: विनय में ही ज्ञान सफलीभूत होता है।
- विनय से पढ़ा शास्त्र विस्मृत हो जाने पर भी परभव में केवल ज्ञान का कारण बनता है।
- शिक्षा वही श्रेष्ठ है जो जन्म-मरण का क्षय करती है।
- विचारों का मूल्य होता है मात्र शब्दों का नहीं।
- पर द्रव्य के आकर्षण का अभाव ही तत्वज्ञान का फल है।
- अगर सम्यग्ज्ञान की रक्षा चाहते हो तो जिनवाणी माँ की रक्षा करो।
- समयसार को कंठस्थ करने की जरूरत नहीं बल्कि हृदयस्थ करने की जरूरत है।

रजिस्ट्रेशन क्र. MP HIN21331/12/1/2007-TC

त्रैमासिक **भाव विज्ञान**
(BHĀVA VIJÑĀNA)

वर्ष प्रथम
अंक तृतीय

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी के धर्म प्रभावक परम शिष्य परम पूज्य मुनिश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज।

•परामर्शदाता•
प्रोफेसर एल.सी. जैन

•सम्पादक•
श्रीपाल जैन 'दिवा'
शाकाहार सदन
एल-75, केशर कुंज,
हर्षवर्धन नगर, भोपाल-3 (म.प्र.)

•प्रबंध सम्पादक•
डॉ. सुधीर जैन
प्राध्यापक, शास. महारानी लक्ष्मीबाई
कन्या स्नातकोत्तर महा., भोपाल
मो. - 9425011357

•कविता संकलन•
पं. लालचंद जैन "राकेश"
गंजबासौदा

•सम्पादक मंडल•
डॉ. सी. देवकुमार, नई दिल्ली
पं. जय कुमार 'निशांत', टीकमगढ़ (म.प्र.)
अजित कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)

•प्रकाशक•
श्रीमति सुषमा जैन
एमआईजी-8/4, गीतांजलि काम्प्लेक्स,
कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल (म.प्र.)
फोन : 0755–2772945

•सदस्यता शुल्क•

परम संरक्षक	11,000/-	रु.
संरक्षक	5,000/-	रु.
विशेष सदस्य	3,000/-	रु.
साधारण सदस्य	1,000/-	रु.

कृपया सदस्यता शुल्क प्रकाशक के एवं रचनाएँ सम्पादक के पते पर भेजें।

पल्लव दर्शिका

विषय वस्तु एवं लेखक — **पृष्ठ**

सम्पादक की कलम से — 2
(श्रीपाल जैन ''दिवा'')

देव दर्शन का फल — 3

अनेकान्त एवं स्याद्वाद — 4
(स्वर्ण-श्रीपाल (आई.पी.एस.), तमिलनाडू)

जैन कर्म सिद्धांत के विलक्षण गणितीय रहस्य प्रोफेसर काजुओ कोंडो के अभिनन्दनीय प्रयास — 8
(प्रोफेसर एल.सी. जैन)

जब महावीर भू पर उतरने लगे — 10
(पं. लालचन्द्र जैन ''राकेश'')

ज्योतिष्कों का धार्मिक एवं मानवीय अनुष्ठानों पर प्रभाव — 11
(ब्र. जय 'निशांत')

समीक्षात्मक उद्‌बोधन-2 — 17
(मुनि श्री आर्जवसागर महाराज)

श्री वर्धमान अतिशय क्षेत्र डेरा पहाड़ी — 20
(मुनि श्री आर्जवसागर महाराज)

जाते हो लाल जाओ — 22
(शिखर चन्द जैन (पथरिया))

THE CYBERNETICS IN JAINA KARMA THEORY — *23*

स्व. श्री शिखरचंद जी जैन का जीवन वृतांत — 31

समाचार — 35

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
भाव विज्ञान से संबंधित समस्त निर्णयों/न्यायों के लिए न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

सम्पादकीय

महावीर का दया का सन्देश

श्रीपाल जैन ''दिवा''

जब करूणा, कृपा और कृतज्ञता के सद्भाव का अभाव होने लगता है, जब अहिंसा का अपमान और हिंसा का सम्मान होने लगता है, जब शाकाहार का तिरस्कार और मांसाहार का एक छत्र राज्य का सद्भाव होने लगता है जब मैत्री-भाव का अभाव होने लगता है, सहिष्णुता का अकाल पड़ने लगता है, जब शांति-समता ढूँढे नहीं मिलती है, हिंसा का हाहाकार चारों ओर मचने लगता है। देवी-देवताओं को बलि चढ़ाकर प्रसन्न करने की क्रूर प्रथा सिर चढ़कर बोलने लगती है, यज्ञों में पशुबलि को धर्म माना जाने लगता है तब किसी महान पुरूष अहिंसा के अवतार का अवतरण होता है। ऐसे अज्ञानांधकार से आच्छादित हिंसा-हत्या के युग में भगवान महावीर स्वामी का अवतरण हुआ था। जिनकी जयंती प्रतिवर्ष हम लोग मनाते हैं।

भगवान महावीर ने तो किसी जीव को सताने-किसी जीव का मन दुखाने को भी हिंसा कहा है। प्राणी की हत्या करना तो बहुत बड़ी बात है महान पाप है। अक्षम्य अपराध है। वर्तमान में ऐसा लगता है कि मनुष्य क्रूरता का अवतार हो गया है। आहार में मांस मछली अण्डों का नित्य प्रयोग आम बात हो रही है। प्रगतिशील होने की निशानी माना जाने लगा है। मांसाहार और मद्यपान इस घोर पाप के कृत्य को स्टेटस माना जाने लगा है। मांसाहार व मद्यपान की कुटेव पर गर्व करते हैं बेचारे अज्ञानी जीव। अब तो तथाकथित जैन भी अभक्ष्य भक्षण कर अपने को धन्य समझने लगे हैं। बीयर-शराब का पीना फेशन में आने लगा है। अभी भी सँभला जा सकता है। पुनः आवश्यकता है मद्यपान एवं मांसाहार के विरूद्ध अभियान चलाने की। जो आचार्य विद्यासागर जी महाराज व अन्य जैन साधुओं ने चला रखा है। यद्यपि यह जीवों के प्रति दयाभाव व्यक्ति में आवे तो ही मांसाहार के त्याग करने की भावना बलवती हो सकती है। हृदय परिवर्तन वाली बात है। वर्तमान युग में यांत्रिक कालखानों के खुलते जाने से जीवों की हिंसा का बाजार गरम है। इतनी हिंसा तो भगवान महावीर के समय में भी नहीं थी। वर्तमान मे तो प्रति मिनिट असंख्यात जीवों की हत्या होने लगी है। भगवान महावीर ने जो जीव दया का सन्देश दिया है उसी को जीवन में उतार कर जीवों की रक्षा हो सकती है और विश्व शांति कायम की जा सकती है। कलह झगड़े और युद्धों को धरती की पीठ से मिटाया जा सकता है। पर मनुष्य मात्र को दया धारण करनी पड़ेगी। सभी धर्मों ने ''दया धर्म का मूल है'', कहा है- धर्म का सार दया है, धर्म का मूलमंत्र दया है, समता के महल की नींव दया है। सहिष्णुता की जननी दया है। मैत्री का सद्भाव भी दया से ही हो सकता है। सदव्यवहार का सद्भाव दया से ही होता है। परोपकार की माँ दया ही है। दूसरों की सहायता व सहयोग करने की प्रेरक दया ही होती है।

हमारा महावीर जयंती मनाना तभी सार्थक हो सकता है जब हम उनके बताये दया के मार्ग पर चलें। जो दया के मार्ग पर चले वही महावीर का सच्चा अनुयायी है चाहे वह जैन हो या नहीं हो। जैन वही हो सकता है जिसने दया को अपने जीवन में उतारा है।

दया धर्म की जय

॥ श्री महावीराय नमः ॥

देव–दर्शन का फल

1. जब कोई जिनेन्द्र प्रभु के दर्शन करने का विचार करता है तो उसे 2 उपवास का फल मिलता है।
2. फिर मंदिर जाने का उद्यम करता है तो उसे 3 उपवास का फल मिलता है।
3. मंदिर जाने का आरंभ आदि करता है तो उसे 4 उपवास का फल मिलता है।
4. मंदिर जाने लगता है तो उसे 5 उपवास का फल मिलता है।
5. कुछ दूर पहुंचने पर 12 उपवास का फल मिलता है।
6. घरे से मंदिर जी के रास्ते के बीच में पहुंचने पर 15 उपवास का फल मिलता है।
7. मंदिरजी के शिखर का दूर से दर्शन करने से एक माह के उपवास का फल मिलता है।
8. मंदिर जी के आंगन में प्रवेश करने पर छः माह के उपवास का फल मिलता है।
9. मंदिर जी के द्वार में प्रवेश करने पर एक वर्ष के उपवास का फल मिलता है।
10. भगवान जी की परिक्रमा करने से सौ वर्ष के उपवास का फल मिलता है।
11. जिनेन्द्र भगवान की वीतराग मुद्रा को एकटक देखने से एक हजार वर्ष के उपवास का फल मिलता है।
12. जिनेन्द्र भगवान की स्तुति पूर्वक पूजा करने से अनंतानंत वर्षों के उपवास का फल मिलता है।

नोट : वास्तव में जिनेन्द्र भगवान के दर्शन से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है।
संदर्भ : पद्म पुराण का पर्व, 32 श्लोक 178 से 182

अनेकान्त एवं स्याद्वाद

-स्वर्ण-श्रीपाल(आई.पी.एस.), तमिलनाडू

अनेकान्त का अर्थ क्या है?

'अनेक' अर्थात् एक से अधिक; अन्त अर्थात् वस्तु-धर्म; वाद अर्थात् तात्त्विक सिद्धान्त है।

'स्यात्' का अर्थ क्या है?

'स्यात्' के 'कदाचित' 'ज्यादातर होनेवाला' इस तरह से जो कोई अर्थ करते हैं पर वे सब ठीक नहीं है। स्यात् का 'एक कोण से' या 'एक दृष्टि से' - इस प्रकार अर्थ करना ही उचित है।

'वस्तु-धर्म के वर्णन के लिए शाब्दिक-शक्ति पर्याप्त नहीं है।' - यही अनेकान्तवाद का आधार है।

केले का फल 'मीठा' है।

आम का फल 'मीठा' है।

कटहल का फल 'मीठा' है।

'मीठा' - इस एक ही शब्द से केले, आम, कटहल आदि अनेक फलों की मिठास का वर्णन करते हैं। 'मीठा' - यह एक ही शब्द है। पर इन तीनों फलों की मिठास में अन्तर है। तीनों मिठास एक ही प्रकार की मिठास नहीं है। प्रत्येक मिठास, उस-उस द्रव्य के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है। केले को ही ले लें। एक तिण्डुकल नगर का केला, दूसरा ई रोड नगर का केला। दोनों केले ही हैं। पर दोनों केलों की मिठास में अन्तर है। क्षेत्र की अपेक्षा दोनों केले ही हैं, पर मिठास की अपेक्षा दोनों में भिन्नता है। हमारे घर में स्थित एक ही केले की कल की मिठास और आज की मिठास में भी अन्तर होता है।

इस प्रकार काल की भिन्नता से मिठास की भिन्नता का अनुभव होता है। फल थोड़ा कच्चा होने पर भी मीठापन में अन्तर आ जाता है।

अतः -

द्रव्य
क्षेत्र
काल और
भाव

इन चार/चतुष्टय के दृष्टिकोण से 'एक ही द्रव्य के गुण भिन्न-भिन्न हैं' - यही अनुभूति होती है, इन भिन्नताओं के हाने पर भी फल तो एक ही केले का फल है। आधार एक ही है। पर शब्द, द्रव्य, क्षेत्र, काल और स्वभाव से भिन्न है। मिठास को स्पष्ट बताने के लिए शाब्दिक शक्ति पर्याप्त नहीं है। अनुभव से ही इसकी प्रतीति हो सकती है। फिर भी शब्दों से भी अभिव्यक्त करना जरूरी है, अतः स्याद्वाद का प्रयोग कर इस मीठापन को समझाने का जो प्रयत्न किया जाता है वही जैन सिद्धान्त है। उसी को स्याद्वाद, सप्तभंगी के नाम से कहा जाता है।

स्याद्वाद अर्थात् शब्दों की नियति या स्वभाव। यह स्वभाव, सभी वस्तुओं के वर्णन में आधारभूत धागे के समान अन्तर्निहित है। 'सप्तभंगी' से तात्पर्य यह है कि यह एक वस्तु के गुण और विशेषताओं को अभिव्यक्त

करनेवाला शब्द-मात्र है। धागे के साथ संलग्न शब्द फूल के समान हैं।

अनेकान्त इस धागे और फूलों का अन्वेषण करता है। किसी भी धागे को निष्फल या निरर्थक कहकर उसका तिरस्कार नहीं करता है तथा किसी भी फूल को गन्धहीन कहकर उसकी उपेक्षा भी नहीं करता। अनेकान्त का ऐसा ही मनोभाव है।

मनोभाव (मन का सन्तुलन), अनेकान्त है।

शब्द-संयम ही स्याद्वाद है।

शब्दों का सच्चा प्रदर्शन ही सप्तभंगी है।

'शब्द निर्बल हैं - यह कहकर उन्हीं शब्दों से अनेकान्त, स्याद्वाद, सप्तभंगी के सिद्धान्तों का निरूपण या विश्लेषण करने का प्रयास जो मेरे द्वारा किया जा रहा है, उसमें मुझे पूरी सफलता मिलेगी'। ऐसा विश्वास मैं नहीं कर पा रहा हूँ।

तमिलनाडू में एक 'जैन धर्म की क्रान्ति' को करने वाले गुरुदेव परमपूज्य मुनिश्री 108 आर्जवसागर जी के आदेश की पूर्तिस्वरुप ही यह निबन्ध लिखा जा रहा है। संसार और सांसारिक जीवों के रचयिता, आद्य एवं स्वयंभू भगवान कोई नहीं है। सूक्ष्म जीव से लेकर देव, मनुष्य गति के जीव तक में विद्यमान आत्माओं का स्वभाव एक ही है। उस गति की आत्माएँ, फँसे हुए कर्मबन्ध के कारण भिन्न-भिन्न हैं। सर्व कर्मों के नाश से सभी जीव ईश्वर-भाव को प्राप्त कर सकते हैं। जैन सिद्धान्त की इस विशदता में ही 'अनेकान्त' प्रतिभाषित होता है।

आज विज्ञान वृद्धि को प्राप्त हो रहा है। आज के विज्ञान में वस्तुओं के बारे में यह बताया जाता है कि वस्तुएँ 'कणों' के रूप में भी परिणमित होती हैं, तथा तरंगों के रूप में भी। 'कण' अपने-आप परिणमित होते हैं। उन्हें परिणमित कराने (या संचालन करने) के लिये बाह्य-शक्ति की कोई आवश्यकता नहीं है। यह आज के विज्ञान का सिद्धान्त है।

प्रत्येक वस्तु को कण-कण में विभाजित कर अन्वेषण करने का न तो समय है और अन्वेषण सामग्रियों को बनाने में भी बहुत ज्यादा खर्च होता है। अतः अधिक विषयों का अन्वेषण न कर, अत्यावश्यक-विषयों का ही अन्वेषण करते हैं। आईन्स्टीन सिद्धान्त का मानना है कि परिणमनमात्र स्वयंपूर्ण नहीं है। इसके लिए एक उदाहरण दिया जा सकता है मान लेते हैं कि दो रेलगाड़ियाँ एक ही दिशा की ओर एक ही गति से जा रही हैं तब दोनों रेल गाड़ियों में बैठे हुए यात्रियों को ऐसा लगेगा कि दोनों रेल गाड़ियाँ एक ही जगह खड़ी हैं। पर गाड़ी के बाहर स्थित लोगों को दोनों गाड़ियाँ तेजी से चलती हुई दिखाई देंगी। इससे यह सिद्ध होता है कि एक कार्य अलग-अलग लोगों को अलग-अलग रूप में दिखाई देता है। आइन्स्टीन का रिलेटिविटि (***Relativity***) सिद्धान्त, जैन सिद्धान्त के 'अनेकान्त' को पुष्ट करता है।

रिलेटिविटि (***Relativity***) में आइन्स्टीन ने एक और नया सिद्धान्त बताया है कि कोई भी वस्तु नाश को प्राप्त नहीं होती। ''द्रव्य से शक्ति और ऊर्जा को उत्पन्न किया जा सकता है, तथैव शक्ति या ऊर्जा से द्रव्य भी उत्पन्न होगा।'' अतः हम कह सकते हैं कि द्रव्य (वस्तु) और शक्ति (गुण) एक ही हैं। परन्तु पर्याय अलग है। स्याद्वाद भी इसी का निरूपण करता है।

जैन सिद्धान्त में द्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य गुण सम्पन्न हैं ऐसा कहा गया है।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य परिणमन को-द्रव्य-परिणमन को जैन-धर्म उद्घाटित करता है। स्याद्वाद को पढ़ते समय हमें इस तथ्य को भी जानना चाहिए। हेकल, कार्ल मार्क्स आदि तत्त्ववेत्ता के 'डयलेक्टिक' तत्त्व को हमारे इस तत्त्व ने मार्ग-दर्शन दिया है। थीसिस (***Thesis***), एन्टी थीसिस (***Anti thesis***), सिन्थीसिस (***Synthesis***) इत्यादि, डायलेक्टिक (***Dialectic***) तत्त्व में बताए गए हैं। राजनीति के फेरबदल को समझाने के लिए यह तत्त्व सहायक है। आत्मा के परिवर्तन को समझाने के लिए स्याद्वाद उपयोगी है।

सत्यार्थ को सही एवं पूर्ण रूप से स्पष्ट करने के लिए, स्याद्वाद पद्धति के अलावा और कोई उपाय नहीं है। स्याद्वाद-पद्धति दुनिया के लिए एक बहुत बड़ी भेंट है। जिसे जैनधर्म ने संसार को दिया। पर एक बात को हमें स्मरण रखना होगा कि इस स्याद्वाद का प्रयोग, सचमुच पदार्थ को समझने के लिए करना चाहिए। उदाहरणार्थ - गाय है, गाय का बछड़ा भी है। गाय के सींग हैं। पर गाय के बछड़े के सींग नहीं है। इस उदाहरण को लेकर घोड़े के सींगों की कल्पना कर उनका अन्वेषण करना मूर्खता है। अंगूठी में सोना है। सुनार उसे कुंडल बना देने पर भी सोना है। पर कुंडल में अँगूठी नहीं है। एक पेड़ है तो उसका बीज भी है। वटवृक्ष का बीज अत्यधिक छोटा है। पर उससे उत्पन्न होनेवाला वटवृक्ष बड़ा होने पर बहुत बड़ा दिखाई देता है। भेद-अभेद, नित्य-अनित्य, आदि स्वरुपों को या परिणामों को स्याद्वाद के बिना किसी अन्य पद्धति से मूलभूत तथ्य से दूर हुए बिना, विवेचन करना संभव नहीं है।

आत्मा नित्य है, शरीर अनित्य है। पर राम की आत्मा और लक्ष्मण की आत्मा दोनों अलग-अलग हैं। राम को चोट लगेगी तो राम का शरीर ही चोट का अनुभव करेगा, लक्ष्मण का शरीर उसे महसूस नहीं करेगा। इस प्रकार भेद-अभेद, नित्य-अनित्य आदि को स्याद्वाद ही स्पष्ट कर सकता है। सभी आत्माएँ ज्ञान-स्वरूपी हैं। अतः राम की आत्मा और लक्ष्मण की आत्मा दोनों में कोई भेद नहीं है- ऐसा कहना भी सच ही है। पर यह वर्णन, राम-लक्ष्मण के शारीरिक भेद को या उनकी शारीरिक अनित्यता को नहीं बता सकता है। 'राम का शरीर अलग है, लक्ष्मण का शरीर अलग है।' - ऐसा कहते समय दोनों भाई कैसे हुए? यह भी इस भिन्नता से समझ नहीं सकते हैं। आत्मा के संबंध को ध्यान में लेकर ही दोनों के भाईपने को स्पष्ट किया जा सकता है।

सत्यार्थ को पूर्णरूप से अनुभव किया जा सकता है। अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। त्रिकाल सम्मत द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की दृष्टि से वर्णन किये जाने वाले शब्दों को स्याद्वाद लाञ्छन से यदि अंकित किया जाए तो संभव है कि एक द्रव्य को पूर्ण रूप से निर्दोष जान सकते हैं।

अनेकान्त	=	मानसिक नियति
स्याद्वाद	=	शाब्दिक नियति
सप्तभंगी	=	वे शब्द

वे सात शब्द, दृष्टि या कोण क्या हैं?

1) स्यात् अस्ति
2) स्यात् नास्ति
3) स्यात् अस्ति-नास्ति
4) स्यात् अवक्तव्य

5) स्यात् अस्ति अवक्तव्य

6) स्यात् नास्ति अवक्तव्य

7) स्यात् अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य

ये सात दृष्टियाँ ही सप्तभंगी कहलाती हैं। यह सप्तभंगी प्रमाण-सप्तभंगी, नयसप्त भंगी के भेद से दो प्रकार है। प्रमाण सप्तभंगी वस्तु की अखण्डता को स्पष्ट करता है। नय सप्तभंगी वस्तुओं के बीच की भिन्नता को स्पष्ट करता है।

ये दोनों प्रकार की सप्तभंगी, पदार्थज्ञान कराने के लिए कुछ मानदंड को अपनाती हैं।

वे मानदंड क्या हैं? -

1) काल	2) आत्म-स्वरूप (स्वभाव)
3) अर्थ (वस्तु/पदार्थ)	4) सम्बंध
5) उपकार	6) गुणीदेश (क्षेत्र)
7) संसर्ग	8) शब्द

उपरोक्त कथन के आधार पर हमने जो समझा है उसे संक्षेप में निम्न प्रकार कह सकते हैं-

(1) स्याद्वाद पदार्थों को 'है' या 'नहीं' इन दो दृष्टिकोण से देखता है।

(2) इन दो दृष्टिकोण से देखते समय अन्य कोण अपने आप समझ में आ जाते हैं।

(3) हरेक दृष्टि से जो बताया जाता है वह सत्य ही है। एक दूसरे का विरोधी नहीं है। जैसा कि जल द्रव (तरल) पदार्थ है, बर्फ दृढ़ (ठोस) वस्तु है। पर वह जल से संयुक्त है। दोनों में विरोध नहीं है।

सत्यार्थ को पूर्ण एवं सत्य रूप से अनुभव करने के लिए जैनधर्म ने विश्व को सबसे बड़ा दान यदि कुछ दिया है तो वह है अनेकान्त। अनेकान्त से जो मनोभाव उत्पन्न होता है वह संसार के सभी लोगों को परस्पर अहित पहुँचाए बिना जीने का मार्ग प्रशस्त करता है। सभी पदार्थों को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखकर सत्य को स्वीकार करता है। ''विस्तृत मनोभाव विकसित होने पर, शब्द निर्बल है, सभी शब्दों में कथंचित् सत्यार्थ है, पूर्ण सत्यार्थ को केवल अनुभव किया जा सकता है।'' यह सिद्धान्त मनुष्य को मनुष्य के रूप में जीने की कला देता है।

अनुवादक (हिन्दी में)
आई.जम्बूकुमारन् जैन शास्त्री

जैन धर्म एवं अहिंसा का महत्व

(भारतीय संविधान में प्रकाशित हिन्दी अनुवाद)

''जैन धर्म आध्यात्मिक क्रांति की वह धारा है जो मनुष्य के चरित्र को परिष्कृत/उदात्त करने की दिशा में सक्रिय है। यह धारा अहिंसा पर जोर देती है और इसे उदात्त चरित्र की प्राप्ति का साधन मानती है। ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध राजनैतिक संघर्ष में अहिंसा महात्मा गाँधी के हाथों में एक शक्तिशाली हथियार सिद्ध हुआ।''

जैन कर्म सिद्धांत के विलक्षण गणितीय रहस्य प्रोफेसर काजुओ कोंडो के अभिनन्दनीय प्रयास

प्रोफेसर एल.सी. जैन

प्रस्तुत लेख इंजीनियरिंग, मेडिकल तथा इन्फो-टेक के शोध छात्रों को नवीनतम जानकारी हेतु संक्षेप में दिया जा रहा है जिसमें आधुनिक वेबसाइट पर "**कवागुची स्पेसेज़**" प्रकरण का उपयोग किया गया है - संपादक

स्वर्गीय जापानी प्रोफेसर काजुओ कोण्डो टोकियो विश्वविद्यालय के एमेरिटस प्रोफेसर थे, (पुण्यतिथि दिसम्बर 2001), जिनसे मेरा संपर्क लगातार पचास वर्षों तक ज्ञान के आदान प्रदान रूप में होता रहा तथा शोधों का प्रकाशन उनके द्वारा संचालित "पोस्ट-रिसर्च ऐसोसियेशन आफ एप्लाइड जामेट्री" के माध्यम से जापान में होता रहा। "**टेन्सर**" पत्रिका के सम्पादक ए. कवागुची ने जो प्रथमदृष्टया ज्यामिति में खोज की उसे सिंज (Synge) ने "कवागुची स्पेसेज़" का नाम दिया और प्राय: सभी टेक्नालाजिकल क्षेत्रों में शोध हेतु उनकी अपार उपयोगिता विश्व में प्रतीत हुई। प्रोफेसर कोण्डो इस विद्या में दक्ष थे और उन्होंने इसका प्रयोग, सर्वप्रथम ज्ञान मीमांसा तथा सूचना तंत्र के आधार पर हाई इनर्जी फिजिक्स के प्राय: सभी प्रकार के कणों के ऊपर नये तथ्य प्रस्तुत किये जिन पर शोध हेतु प्रोजेक्ट बनने जा रहे हैं।

जब कोण्डो ने 1992 में प्रकाशित मेरी पुस्तक **"The Tao of Jaina Sciences"** देखी तो उन्होंने अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा एवं अनुभव का प्रयोग जीवों सम्बन्धी गणितीय रहस्यों के अध्ययन तथा प्रकाशन में लगा दिया। पुस्तक को पढ़ते ही उन्होंने जो अभ्युक्ति प्रेषित की उसका अंश निम्न है।

"I was impressed by the profound back ground of your presentation. I have to confess that I had to be stuck at every term I met technical terms in languages of Indian origin........., Your way of attributing the differentiation of bio-creature classes to different kinds of Karmas restricting them reminds me of the fundamental groups in defining different kinds of geometry according to the Erlangen Programme."

जैन कर्म सिद्धान्तानुसार कर्मों का बाहुल्य जहाँ आत्म गुणों का बाधक तथा उनका अल्पत्व आत्मोपलब्धि में साधक होकर वैषम्य से सरलता की ओर ले जाता है, वैसे ही एकेन्द्रियादि जीवों का गणित अत्यंत जटिलता से तथा पंचेन्द्रिय विकसित सम्यक दृष्टि जीवों का गणित अत्यंत सरलता से सुलभ होता है। इसी को आधार देने वाली उनकी **गणितीय कल्पना** निम्नरूप से प्रस्तुत की गयी है,

"Bio-creatures have generally tendency to converge to single-parametric geometry. It could be the general direction of evolution that higher more developed kinds of plants and animals assume a $K^{(m)}_N$ constitution while lower less developed kinds may linger on or reveal the multiparametric constitution"

इसी प्रकार के अन्य रहस्यों का उद्‌घाटन कोण्डो ने अपनी त्रिविध रूपों द्वारा अभिव्यक्त गणितीय आलोक में किया। ये त्रिविध रूप क्रमशः विमाओं *(dimensions)* के निर्देशांकों, प्राचलों *(parameters)* के निर्देशांकों तथा उच्चतरक्रम व्युत्पन्न *(higher order derivatives)* अथवा परिवर्तनों की घटती, बढ़ती दरों द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं। षट् स्थान पतित गुणहानि की जैन कल्पना से सभी परिचित हैं। कोण्डो के अनुसार जहाँ पुद्‌गल में *"entropy"* विशेष गुण होता है वहाँ जीवों में *"negentropy"* व्यक्तित्व की जीवों में विभिन्नता के गणितीय रूप को प्रदर्शित करने वे लिखते हैं, ***"Significant higher order spaces, if any, definable in such a regime of individuality, carry of necessity creatures distinguished with individual aspects in spite of having a similar space construction. We may compare the set of such similar creatures to a species of bio-creatures.***

अगले लेखों में हम उनके अन्यान्य प्रकरणों से परिचित कराते चलेंगे, क्योंकि यह शोध क्षेत्र अत्यधिक महत्व का आँका गया है।

दीक्षा ज्वेलर्स के ऊपर,
सराफा वार्ड, जबलपुर (म.प्र.)
मोबा.: 9425386179
e-mail : lcjain25@rediffmail.com

AVAILABLE FOR SALE

"The Exact Sciences in the Karma Antiquity",

in

FOUR VOLUMES (I – IV)

a collection of unique technological & historical material based on INSA(Indian National Science Academy) Project : 1992-1995, BY Dr. Prof. L.C. Jain.

CONTACT

ABOVE DIKSHAA JWELLERS, 554, SARAFA WARD, JABALPUR {MOB 9425386179}

जब महावीर भू पर उतरने लगे

- पं. लालचन्द्र जैन ''राकेश''

जब महावीर का जी चला स्वर्ग से,
तन लगा कोसने स्वर्ग दुर्भाग्य को।
त्रिसला के सपनों को सुनकर सुफल,
भू ने सहारा निज सौभाग्य को॥
मनुष-पशु-खगों की कहें क्या खुशी,
लता-वृक्ष भी खिलके हँसने लगे।
जब महावीर भू पर उतरने लगे॥

चलने लगा गंधवाही पवन,
मधुप गीत खुशियों के गाने लगे।
सूरज के स्वर्णिम सुखद कर सहस,
कलियों के आँसू सुखाने लगे ॥
लता-वृक्ष पुष्पित-फलित हो उठे,
नगर-द्वार-तोरण थे सजने लगे।
जब महावीर भू पर उतरने लगे॥

कलियों ने आपस में की गुफ्तगू,
''अब दुक्ख दुनिया का मिट जायगा।
हिंसा पिशाचिन का नामो निशां -
सुनिश्चित ही भूतल से मिट जायगा॥
आ रहे हैं हमारे सही रहनुमा,
सभी एक स्वर में ये कहने लगे''
जब महावीर भू पर उतरने लगे॥

''वे चलेंगे जहाँ, जग चलेगा वहीं,
वे रूकेंगे जहाँ, जग रूकेगा वहीं।
उनकी थकेगी भले देह नश्वर,
पर, उनके संदेश रूकेंगे नहीं ।''
उनकी चरण रज लगाने स्वयं-
सरवर से सरसिज निकलने लगे।
जब महावीर भू पर उतरने लगे॥

सम्पर्क - नेहरू चौक, गली नं. 4,
गंजबासौदा, विदिशा (म.प्र.)

ज्योतिष्कों का धार्मिक एवं मानवीय अनुष्ठानों पर प्रभाव

ब्र. जय 'निशांत'

यह लोक तीन वातवलय से घिरा 14 राजू ऊँचा एवं 7 राजू विस्तार वाला है। जिसमें 6 द्रव्य पाये जाते हैं। प्राणी अपने कर्मानुसार इसमें संसरण करता रहता है। इसमें अधोलोक, मध्य लोक एवं ऊर्ध्वलोक हैं, जहाँ प्राणी 84 लाख योनियों में परिभ्रमण करता रहता है। कुछ भव्य जीव सम्यक् पुरुषार्थ करके संसार से छूटकर सिद्धत्व को प्राप्त होते हैं। मध्यलोक के केन्द्र में एक लाख योजन थाली के आकार का जम्बूद्वीप है, जिसके चारों ओर 2 लाख योजन का लवण समुद्र है, इसके बाद चारों ओर द्विगुणित-द्विगुणित होते हुए असंख्यद्वीप एवं समुद्र हैं। अंतिम द्वीप एवं समुद्र स्वयंभूरमण है। जम्बूद्वीप के ठीक मध्य में 1 लाख 40 योजन का सुमेरु पर्वत है, जिसके पूर्व और पश्चिम में विदेहक्षेत्र हैं तथा उत्तर और दक्षिण में ऐरावत एवं भरतक्षेत्र स्थित हैं। इन क्षेत्रों का बँटवारा हिमवन आदि छह कुलाचल पर्वतों से होता है, इन कुलाचलों से गंगासिंधु आदि नदियाँ निकलती हैं।

पृथ्वीलोक से 790 से 900 योजन क्षेत्र में ज्योतिर्लोक है। जिसमें सूर्य चंद्रमा आदि के निरन्तर गतिशील रहने से क्षेत्रों में दिन-रात रूप काल परिवर्तन होता है। सूर्योदय जहाँ जीवन में जागरण चेतना, सक्रियता एवं दिनचर्या आरम्भ करने का संदेश देता है, वहीं सूर्यास्त प्रमाद, आलस्य, संकुचन एवं निद्रा का प्रतीक है। सूर्य के समान ही सभी ग्रह उदय एवं अस्त को प्राप्त होते रहते हैं। जिनकी रश्मियों का प्रभाव चराचर पर निरन्तर होता रहता है। प्रत्येक प्राणी अपने शरीर, संहनन, बल एवं विवेकानुसार इन ग्रहों की रश्मियों से प्रभावित होते हैं। शरीर की सक्षमता द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव एवं पुण्योदय के काल में प्राणी ग्रहादि की ऊर्जा एवं गति से सुख-समृद्धि, स्वास्थ्य को प्राप्त होता है तथा इसके विपरीत प्राणियों पर इस ऊर्जा का विपरीत प्रभाव भी परिलक्षित होता है।

जैनदर्शनानुसार ज्योतिष्क विमान (सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र एवं तारे) देवों के चार भेदों में से एक भेद है। ज्योतिष्क विमानों के गमन से होने वाले प्रभावों को सभी धर्मों ने स्वीकार किया है। जैनज्योतिष एवं वैदिक ज्योतिष में भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है।

जैन ग्रंथों में ज्योतिष का वर्णन विद्यानुवाद और परिकर्म में किया गया है। आचार्य पुष्पदन्त एवं भूतबलि महाराज विरचित षट्खण्डागम-धवला टीका 1 में रौद्र, श्वेत, मैत्र, सारभट, दैव्य वैरोचन, वैश्वदेव, अभिजित, रोहण, बल, विजय, नैऋत्य, वरुण, अर्यमन और भाग्य ये मुहूर्त आये हैं। इनका वर्णन मूल श्लोकों में है, टीका वीरसेन स्वामी ने की है- 4/318।

प्रश्नव्याकरण में नक्षत्रों में प्रत्येक मास की पूर्णमासी को उस मास का प्रथम कुल नक्षत्र, दूसरा उपकुल नक्षत्र और तीसरा कुलोपकुल संज्ञक नक्षत्र वर्णित है। इस वर्णन का प्रयोजन उस माह के फलादेश से सम्बन्ध रखता है। इसी ग्रन्थ में ऋतु, अयन, मास, पक्ष, नक्षत्र और तिथि सम्बन्धी चर्चा भी है।

समवायांग में नक्षत्रों की ताराएँ एवं उनके दिशाद्वार का वर्णन है। आचार्य यतिवृषभ एवं आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने सम्पूर्ण ज्योतिष का वृहत् विवेचन अपने ग्रन्थ तिलोयपण्णत्ती एवं त्रिलोकसार में किया है। आचार्य जयसेन स्वामी ने नक्षत्रों के अधोमुख, ऊर्ध्वमुख, तिर्यग्मुख आदि भेद किए हैं, जिनके अनुसार नींव खनन,

शिलान्यास, पाणिग्रहण, गृहप्रवेश, प्रतिष्ठा आदि कार्य सम्पन्न किये जाते हैं। शेष ग्रन्थों का वर्णन संदर्भ सूची में वर्णित किया है।

ज्योतिष्क विमान कक्ष में रहते हुए हमेशा गतिमान रहते हैं, पूर्ण परिक्रमा 360^0 होती है, जिसे 12 भागों में विभाजित किया गया है, जिन्हें राशि कहते हैं। यह 30^0 की होती है। प्रत्येक चराचर पर इन ग्रहों की ऊर्जा का प्रभाव गर्भ-जन्म से लेकर मरण तक पूरे जीवन भर पड़ता है। ज्योतिष्कों का मानव जीवन पर प्रभाव जानने के लिये मानव शरीर की जानकारी आवश्यक है। मानव शरीर वैज्ञानिकों के लिए भले ही विस्मयकारी हो पर जैनाचार्यों के लिए नहीं है। तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि एवं उससे सम्बद्ध शास्त्रानुसार शरीर को किसी मानव या भगवान ने नहीं बनाया है बल्कि यह स्वयं ही प्रत्येक जीव के भावकर्म, द्रव्यकर्म एवं नोकर्मानुसार निर्मित होता है। आत्मा रागद्वेष रूप भावकर्म से द्रव्यकर्म रूप पुद्‌गल कर्म वर्गणाओं को ग्रहण करता है जो ज्ञानावरणादि रूप से आठ प्रकार की होती हैं। किसी कार्य की सम्पन्नता में अंतरंग एवं बहिरंग दो कारण आवश्यक होते हैं, कोई भी कार्य बिना कारण संभव नहीं हो पाता है। प्राणी को पूर्व कर्मानुसार गति एवं शरीर की प्राप्ति होती है। पूर्व जन्म के संचित कर्म उदयानुसार भोगना होते हैं, यही भाग्य कहलाता है।

जैनधर्म वैज्ञानिक धर्म है, जैनाचार्य समन्तभद्र के अनुसार शरीर एक यंत्र है, जिस प्रकार ड्राइवर यंत्र का संचालन करता है, उसी प्रकार शरीर रूपी मशीन को जीव (आत्मा) संचालित करती है। इस मशीन के मस्तिष्क, हृदय, पाचनतंत्र, रक्ततंत्र, तंत्रिकातंत्र के द्वारा स्पर्श, रसना, घ्राण, चक्षु एवं कर्ण उपकरण कार्य करते हैं। इनके अलग-अलग कार्य स्वयमेव संचालित होते रहते हैं, इनकी कार्यप्रणाली में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भाग्य एवं पुरुषार्थ का प्रभाव पड़ता है। मानव शरीर ज्योतिः उपशरीर द्वारा नक्षत्र जगत से, मानसिक उपशरीर द्वारा मानसिक जगत से और पौद्‌गलिक उपशरीर द्वारा भौतिक जगत से जुड़ा होता है। अंतरंग और बहिरंग दोनों कारणों की मुख्यता होती है। उपकरण के खराब होने पर अंतरंग कारण तथा अंतरंग भाव की हीनता होने पर उपकरण कार्य नहीं कर पाता है। इसकी क्रिया विधि आगे वर्णित की गई है।

ग्रहों का प्रभाव

ग्रहों का मानव जीवन पर प्रभाव जानने के लिए ग्रह ऊर्जाविज्ञान, ज्योतिषविज्ञान, स्वप्न विज्ञान, खनिज विज्ञान, गणित, भौतिकविज्ञान, रसायनविज्ञान, प्राकृतिकचिकित्सा, एक्यूप्रेशर, रैकी, स्पर्शचिकित्सा, रंगचिकित्सा, संगीतचिकित्सा आदि का आधार लेना होगा। ग्रहों की गति, रंग, ऊर्जा विकरण, स्थान, काल, स्थिति, तीक्ष्णता, ध्वनि, ऋतु, सभी व्यक्ति के मन, वचन एवं शरीर को अलग-अलग प्रकार से प्रभावित करते हैं। किसी मांगलिक कार्य का शुभारम्भ करने के लिए जैनाचार्यों ने शुभ तिथि, वार, नक्षत्र, करण, योग, काल, पञ्चपरमेष्ठी की साक्षी, योग्य प्रतिष्ठाचार्य एवं पात्रों की मन-वचन-काय की शुद्धि की अनिवार्यता कही है।

ईसा से 600 वर्ष पूर्व यूनान के पाइथोगोरस ने 'ग्रहीय समन्वय सिद्धान्त' में कहा, ग्रहों एवं नक्षत्रों की गति से उत्पन्न ध्वनि में विशेष तालमेल होता है। पैरासेल्सस ने इस सिद्धान्त पर कार्य करते हुए बताया जब यह तालमेल किसी कारण वश टूटता है तो उसका प्रभाव प्राणियों पर पड़ता है। पैरासेल्सस ने ग्रह नक्षत्रों की स्थिति को ज्ञात करके अनेक रोगों का पता लगाकर उनका निदान भी खोज निकाला, 'द यूनिवर्स इन द लाइट ऑफ माडर्न

फिजिक्स' पुस्तक में वैज्ञानिक प्लांक कहते हैं कि सूर्य के बारे में आज तक प्राप्त जानकारी नगण्य है। प्राचीन ऋषियों ने पराविद्या द्वारा उसके सूक्ष्म रहस्यों को ग्रंथों में उद्घाटित किया है। उससे लाभान्वित होने के लिए जिन साधनों को बताया था वे अवैज्ञानिक जान पड़ते थे, परन्तु विज्ञान जैसे-जैसे सूक्ष्मता की ओर बढ़ रहा है वैसे-वैसे वे ही साधन अब तक विज्ञान की कसौटी पर खरे उतरे हैं। शरीर एवं भौतिक विज्ञान शास्त्री प्रो. जार्ज लाखेवस्की ने 'लिग्राण्ड प्रॉब्लम' में लिखा है कि सूर्य, मंगल आदि समस्त ग्रह-उपग्रहों से आने वाली किरणें निश्चित रूप से प्रभावित करती हैं। यह प्रभाव इतना सूक्ष्म होता है कि यंत्रों के द्वारा पकड़ में नहीं आता है।

डॉ. अलेक्जेण्डर कैनन चिकित्साशास्त्री अपनी पुस्तक 'दि इनविजिबल इन्फ्लूएन्स' में लिखते हैं कि सूर्य में ऐसी अदृश्य किरणें हैं जिनकी गुणधर्म एवं उपयोगिता को यदि समझा जा सके तो वह वरदान सिद्ध हो सकते हैं। डॉ. एफ. प्रिवेल्ड कहते हैं यदि धूप का उपयोग ठीक प्रकार से किया जाए तो स्वास्थ्य में स्थिरता आ सकती है। डॉ. सोनी का कहना है कि सूर्य केवल बाहरी चमड़ी पर ही नहीं बल्कि आंतरिक ग्रंथियों को भी ऊर्जा देता है जो भोजन के पाचन एवं संस्थान को स्वस्थ रखते हैं।

विशेषज्ञों का मानना है कि सूर्य प्रकाश रंगों का प्रभाव शरीर के विभिन्न अंगों पर अलग-अलग होता है पीले रंग की किरणें तिल्ली, लीवर, फेफड़े एवं पाचन प्रणाली को सुदृढ़ करती हैं। हरा रंग पीयूष ग्रंथि को प्रभावित करता है, मानसिक तनाव को दूर करता है, माँसपेशियों को सुदृढ़ करता है। आसमानी रंग चयापचय प्रक्रिया को बढ़ाता है, शरीर के ताप को कम करता है। नीला रंग भक्ति, प्रेम एवं अनुराग आदि शुभ भावनाओं को जाग्रत करता है। बैंगनी रंग, सोडियम, पोटेशियम को नियंत्रित करता है तथा जीवनशक्ति बढ़ाने वाले ल्यूकोसाइट्स नामक रक्त कणों के निर्माण में सहयोगी बनता है, मानसिक दुर्बलता को दूर करता है।

वनस्पति भी सूर्य के प्रकाश को ग्रहण कर प्रकाश संश्लेषण क्रिया करते हैं, ऑक्सीजन का निर्माण करके पर्यावरण को शुद्ध करते हैं। उनमें विभिन्न रोगों की प्रतिरोधी विटामिन्स एवं खनिज पदार्थ उत्पन्न होते हैं, अतः डॉक्टर भी हरी साग-सब्जी खाने पर जोर देते हैं। इसके विपरीत सूर्य प्रकाश के अभाव में उत्पन्न प्याज-लहसुन आदि तामसिक प्रवृत्ति वाले होते हैं, जो शरीर को हानि पहुँचाते हैं।

सूर्यप्रकाश के लालरंग के ऊपर इन्फ्रारेड एवं बैंगनी प्रकाश के नीचे अल्ट्रावॉयलेट किरणें होती हैं जो जीवाणु उत्पन्न नहीं होने देती, जहाँ-जहाँ यह पहुँचती है। सूक्ष्म जीव, फफूँद, कीड़े-मकोड़े उत्पन्न नहीं होते। सूर्यास्त के होते ही असंख्य जीव उत्पन्न होने लगते हैं, काले कीड़े, झीगें एवं पंखी आदि इसका साक्षात् उदाहरण हैं।

अल्ट्रावॉयलेट एवं इन्फ्रारेड ये दोनों किरणें सूर्योदय के 48 मिनट के पश्चात् सक्रिय होती हैं तथा सूर्यास्त के 48 मिनट पूर्व प्रभावहीन हो जाती हैं। अतः जैनाचार्यों ने सूर्योदय के 48 मिनट पश्चात् तथा सूर्यास्त के 48 मिनट पूर्व भोजन करने का निर्देश दिया है।

पीनियल ग्रंथि सूर्योदय एवं सूर्यास्त से प्रभावित होती है। सूर्यास्त होते ही उससे निकलने वाला मैलाटानिन रक्त में मिलने लगता है जिससे नींद आने लगती है। प्रातः होते ही स्राव निष्क्रिय हो जाता है।

फाईलेरिया जीवाणु रात्रि में ही सक्रिय होता है तथा सूर्योदय होते ही विलीन हो जाता है। इस जीवाणु की

सक्रियता चाँदनी रात्रि में कम एवं कृष्णपक्ष की एकादशी से अमावस्या तक अधिक देखी गयी है।

चन्द्रमा की घटती-बढ़ती कलाओं से समुद्र में ज्वार-भाटा आता है, उसी प्रकार शरीर के रुधिर प्रवाह में भी अपना प्रभाव डालकर व्यक्ति को उत्तेजित एवं सुस्त बनाता है, क्योंकि शरीर में भी जल की मात्रा 70 प्रतिशत होती है। चंद्रमा का मन से सम्बन्ध होता है, अतः पूर्णमासी को अत्यधिक उत्तेजना से अधिक हत्याएँ मारकाट एवं बलात्कार होते पाये गये हैं।

रात्रि में चार पहर होते हैं-प्रथम रौद्र, द्वितीय राक्षस, तृतीय गंधर्व एवं अंतिम मनोहर कहलाता है। नामानुसार इनका प्रभाव होता है। अतः रौद्र एवं राक्षस का आधा भाग व्यतीत होने पर ही शयन करना चाहिए तथा मनोहर के समाप्त होने के पहले जागरण करने से स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

ज्योतिष, खगोल, भूगोल, खनिज, भौतिकी, चिकित्सा विज्ञानी एक मत से ग्रहों का मानव जीवन पर प्रभाव मानते हैं। ग्रहों की गति, गुरुत्वाकर्षण, परिक्रमाकाल में व्यतिक्रम होते ही उनका प्रभाव जीवों के मनोमस्तिष्क पर पड़ता है। पृथ्वी में चुम्बकीय शक्ति होती है तथा हमारे शरीर में भी लौहतत्त्व होता है अतः पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण भी प्राणियों के शरीर एवं स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है।

ज्योतिष्क एवं मानव शरीर का सम्बन्ध निम्नानुसार है-

बृहस्पति-प्राणीमात्र के शरीर का प्रतिनिधित्व करता है, यह उदारता, धर्म, कानून, सौन्दर्य, प्रेम, शक्ति-भक्ति, ज्ञान, व्यवस्था आदि भावों का प्रतिनिधित्व करता है। पैर, जंघा, जिगर, पाचन क्रिया, रक्त एवं रसों को प्रभावित करता है।

मंगल- साहस, बहादुरी, दृढ़ता, आत्मविश्वास, क्रोध, लड़ाकू प्रवृत्ति एवं प्रभुत्वादि भावों एवं विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। सिर, नाक एवं गाल आदि का प्रतीक है, इसके द्वारा संक्रामक रोग, घाव, खरोंच, आपरेशन, रक्तदोष, दर्द आदि अभिव्यक्त होते हैं।

चन्द्रमा-यह संवेदन, आन्तरिक इच्छा, उतावलापन, भावना (विशेषतः घरेलू जीवन की भावना) कल्पना, सतर्कता एवं लाभेच्छा को व्यक्त करता है तथा पेट, पाचनशक्ति, अतिस्तन, गर्भाशय, आँख एवं नारी के समस्त गुणों पर प्रभाव डालता है।

शुक्र- यह सौंदर्य, ज्ञान, आनंद, आराम, विशेष प्रेम, स्वच्छता परखबुद्धि, कार्यक्षमता आदि को प्रभावित करता है। शारीरिक दृष्टि से गला, गुरदा, आकृति, वर्ण, केश तथा साधारणतः शरीर संचालित करने वाले अंग एवं लिंग आदि को प्रभावित करता है।

बुध- यह समझ, स्मरण शक्ति, खण्डन-मण्डन शक्ति, सूक्ष्म कलाओं की उत्पाद शक्ति एवं तर्कणा आदि का प्रतिनिधि है। शारीरिक दृष्टि से यह मस्तिष्क, स्नायुक्रिया, जिह्वा, वाणी, हाथ तथा कलापूर्ण कार्योत्पादक अंगों पर प्रभाव डालता है।

सूर्य- पर प्रभावक, राजा, मंत्री, सेनापति आदि पर प्रभाव डालता है। प्रभुता, ऐश्वर्य, प्रेम, उदारता, महत्त्वाकांक्षा, आत्मविश्वास, आत्मनियँत्रण, विचार और भावनाओं का संतुलन एवं सहृदयता का प्रतीक, शरीर में हृदय, रक्त संचालन, नेत्र, नाड़ियाँ, दाँत, कान आदि अंगों पर प्रभाव डालता है।

शनि–तात्त्विक ज्ञान, विचार स्वातंत्र्य, नायकत्व, मननशीलता, कार्यपरायणता, आत्मसंयम, धैर्यदृढ़ता, गंभीरता, चारित्र शुद्धि, सतर्कता, विचार शीलता एवं कार्यक्षमता का प्रतीक है। शारीरिक दृष्टि से हड्डियाँ, नीचे के दाँत, बड़ी आँत और माँसपेशियों पर प्रभाव डालता है।

धार्मिक एवं मानवीय अनुष्ठानों की उपयोगिता

धार्मिक अनुष्ठान करने का मुख्य उद्देश्य अशुभ से निर्वृत्ति एवं शुभ में प्रवृत्ति होकर शुद्ध अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना है। आचार्य यतिवृषभ एवं नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती उल्लेखित करते हैं कि सम्यक्दृष्टि देव अकृत्रिम जिनालय में आत्मकल्याण की भावना से अभिषेक एवं पूजा का कार्य करते हैं। जबकि मिथ्यादृष्टि देव अकृत्रिम जिनबिम्बों को कुलदेवता मानकर अभिषेक एवं पूजा करते हैं। जिनेन्द्र भक्ति का मूल उद्देश्य जिनेन्द्र जैसा बनना है वंदे तद्गुण लब्धये। भक्ति, पूजा, दान, स्वाध्याय, सामायिक, जप आदि समस्त क्रियाओं से शुभास्त्रव होता है परन्तु हमारी लौकिक आकांक्षाओं में ही वह नष्ट हो जाता है। जिस शुभ ऊर्जा से हमें संयम, साधना, तप, संवर एवं निर्जरा का सौभाग्य मिल सकता है उसे हम व्यर्थ में ही गँवा देते हैं।

आगम में लेश्यानुसार खोटे परिणामों से अशुभ कर्मों का आस्त्रव होता है तथा शुभ परिणामों से शुभ कर्मों का आस्त्रव होता है जो क्रमशः आत्मा को पतित एवं पावन बनाते हैं।

विज्ञान भी जैनदर्शन की लेश्या को स्वीकार करता है। चेतनशक्ति या प्राणों को सूक्ष्म शरीर के रूप में सन् 1901 में जर्मन वैज्ञानिक मेक्स प्लांक की 'क्वांटम थ्योरी' के आधार पर स्वीकार किया है। इस थ्योरी के अनुसार मानसिक अनुभूति, शक्ति, विचार, स्मृति आदि अभौतिक अनुभूति या विज्ञान की पकड़ से बाहर हैं। सन् 1968 में रूसी वैज्ञानिक वी. इयूशिन व वी. ग्रिसचेको सतत् अनुसंधान से इस नतीजे पर पहुँचे कि मनुष्य के सूक्ष्म शरीर के अतिरिक्त एक ऊर्जा शरीर भी होता है, जिसे बायोलॉजीकल प्लाज्मा बॉडी का नाम दिया गया है।

आभामण्डल सूक्ष्म शरीर एवं तैजसशरीर के रूप में रहता है। रूसी वैज्ञानिक सेमसोन किर्लियान तथा उनकी पत्नि डॉ. वेलेन्टीना किर्लियान के द्वारा मानव, पशु एवं पेड़ पौधों के आभामण्डल के चित्र निकालने के पश्चात् उसकी विद्युत चुम्बकीय ऊर्जा को स्वीकार किया है।

खोटेभाव, क्रोध, बैर, अहंकार, छल-कपट, हिंसा रागद्वेष के क्षणों में आभामण्डल काला, नीला एवं कटा हुआ बनता है जो ब्रह्माण्ड से अपने विद्युत चुम्बकीय प्रभाव से अशुभ ऊर्जा का संचय करता है तथा खोटे विचारों में वृद्धि करता है। इसके विपरीत जब संवेदना, करुणा, दया, परोपकार का भाव आता है, तो आभामण्डल पीला, गुलाबी या सफेद एवं पूर्ण बनता है जो शुभ ऊर्जा का संचय करअच्छे विचारों में वृद्धि करता है।

लक्ष्यहीन कार्य कभी सफल नहीं होता। हमारी अनुष्ठान क्रियायें व्रत, उपवास मात्र परम्परा का ही पोषण करती हैं, इससे होने वाली उपलब्धता का आकलन हमने नहीं किया है। विचार करें इतने वर्षों की संयम साधना, पूजा, स्वाध्याय एवं जाप से हमारा क्रोध, मान, छल-कपट, लोभ, निंदा, ईर्ष्या परिणाम कम क्यों नहीं हुआ? भावों में निर्मलता क्यों नहीं आई ? इसका क्या कारण है ? गल्ती कहाँ हो रही है ?

आचार्यों ने कहा है कि पाप का बुद्धिपूर्वक त्याग करना, पाप प्रवृत्ति से हटने का मन, वचन एवं काय से प्रयास करना। जिस प्रकार अपने बच्चे को डॉक्टर बनाने के लिए बायो साइंस विषय, अच्छा स्कूल, अच्छी कोचिंग

एवं पूर्ण श्रम करते हैं। परिवार के सभी सदस्य उसके अध्ययन में सहयोगी बनते हैं, अच्छी कोचिंग में प्रवेश के लिए डोनेशन भी देने को तैयार रहते हैं। सिलेक्शन होने पर बालक 5-6 वर्ष अथक परिश्रम करता है, तब कहीं एक डिग्री मिलती है। क्या हमने कभी सच्चा श्रावक बनने एवं धार्मिक क्रियाएँ जानने-सीखने के लिये अच्छी कोचिंग की है।

एकाग्रता से स्वाध्याय, जाप, संयम साधना को स्वीकार किया है? मात्र औपचारिकता से संवर-निर्जरा संभव नहीं है। उतना ही प्रयास करना होगा, जैसा फैक्ट्री बंद होने पर खाना-पीना एवं दिन-रात भूलकर जुट जाते हैं। पाप की फैक्ट्री दिन-रात चले और पुण्य का कार्य 1 घंटे भी सम्यक् रूप से न हो पाये क्या पायेंगे इससे ?

पानी को उबालने के लिए 100^0 का तापमान आवश्यक है यदि 50 या 80 तक गर्म करके छोड़ दें तो कभी भी उबलना संभव नहीं उसी प्रकार संवर एवं निर्जरा के लिए जितनी मन, वचन एवं काय की शुद्धि एकाग्रता आवश्यक है, करना होगी तभी आत्मा से संलग्न कर्मों का क्षय हो सकेगा।

दैनिक सामायिक स्वाध्याय, पूजा, दान, जाप आदि की सम्यक्विधि जानना-समझना एवं स्वीकार करना आवश्यक है। आचार्यों ने सर्वप्रथम भोजन शुद्धि से चित्त शोधन करना बताया है, ''जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन'' अभक्ष्य भक्षण करने वाले की शुभ भावना हो ही नहीं सकती क्योंकि उसके शरीर में जहरीला, उत्तेजना एवं विषय-वासना बढ़ाने वाला रसायन बन रहा है। जब तक वह नहीं रुकेगा अनुष्ठान करना संभव नहीं है। मानसिक तैयारी हमारी भावना एवं संकल्पशक्ति को बढ़ाती है। जिनेन्द्र अनुराग एवं श्रद्धान से प्राप्त शक्ति शारीरिक निरोगता एवं कर्मक्षय के साथ आत्मशक्ति को बढ़ाती है। जैसे-जैसे कर्मों का क्षय, क्षयोपशम होता है सांसारिक विकल्प हटने लगते हैं, पापाचरण के साथ कषाय, शारीरिक आसक्ति, भोगों के प्रति गृद्धता कम होने लगती है। जीवन सरल एवं सहज होकर आंतरिक शुद्धता को प्राप्त होने लगता है, जिससे साधक समाधि की ओर बढ़ता है।

क्रमशः ....

पुष्प भवन, टीकमगढ़ (म.प्र.)

करुणा कृपा कृतज्ञता, मनुज हृदय से दूर।
वहाँ अहिंसा कहँ रहे, हिंसा मद में चूर ॥
जग में हो अवमानना, आज अहिंसा रोय।
हिंसा को सम्मानता, सर्वनाश ही होय ॥
उपदेशक तो बहुत हैं, न्यून उदाहरण आज।
चर्मभुक्त परिवार हो, यही अहिंसा काज ॥
करुणा शाकाहार है, आत्म अहिंसा राज।
मांसाहार है क्रूरता, हिंसा का है राज ॥
करूणा मैत्री भाव है, शाकाहार विचार ।
शांति अहिंसा सहिष्णुता, समता का आचार ॥
पर्यावरण का रक्षक है, शाकाहार महान ।
सहअस्तित्व समादरे, स्वस्थ रहे हर प्राण ॥

श्रीपाल जैन ''दिवा''

विद्वत संगोष्ठी राँची

समीक्षात्मक उद्बोधन-2

मुनि श्री आर्जवसागर महाराज

गतांक से आगे ....

अब हम आगे चलते हैं पाँच स्थावरों के बारे में भी चिंतन करते हैं। कई लोग सिद्ध नहीं कर पाते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर हैं और इनमें जीव कैसे हैं? वनस्पति को तो जीव मानते ही हैं चलो, वायु भी मान लें क्योंकि वह विक्रिया होती है और यहाँ-वहाँ जाती भी है। जल भी उसी तरह मान लें जल भी जीव है। लेकिन पृथ्वी को जीव कैसे मान लिया? तो उसका उत्तर यह है कि वह पृथ्वी बढ़ती है, चट्टाने बढ़ती हैं, ठोस भी बन जाती हैं। परतदार चट्टान, आग्नेय चट्टान आदि का विषय बचपन में पढ़ते ही थे। चलो तो पृथ्वी को भी जीव मान लिया गया। अब अग्नि में जीव कैसे मानना? अग्नि तो जला देती है। जीवों को भी समाप्त कर देती है। अग्नि में जीव कैसे मानेंगे? वस्तुतः इसकी सिद्धि में कुछ लोग मौन रह जाते हैं। लेकिन मैं इसकी सिद्धि आपके सामने बतलाता हूँ कि किसी भी जीव का श्वास के बिना जीवन नहीं रहता। मतलब प्राण तो दस होते हैं परन्तु एक जीव के कम से कम चार प्राण होते हैं। जैसे एकेन्द्रिय जीव के पास एक स्पर्शन इन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु। अब देख लीजिए कम से कम चार प्राण के बिना कोई जीव नहीं रहता। आप बोलेंगे कि अग्नि के पास कहाँ श्वासोच्छ्वास है? तो मैं बताऊँ आपको; देख लीजिए एक प्रयोग है जैसे एक कुआ है या सुरंग है बहुत गहरा है। उसमें एक लालटेन छोड़ते हैं, एक रस्सी आदि के सहारे उसे छोड़ा जाता है। जब तक या जहाँ तक वह जलती रहेगी वहाँ तक वायु है। उसके नीचे वायु नहीं और वहाँ हमें जाना अशक्य है। ये सामान्य प्रयोग हैं जिसे लोग नीचे उतरने के लिए करते हैं। जहाँ तक वह दीपक जलता रहेगा वहाँ तक वायु है ऐसा अनुमान कर लेते हैं। इसका मतलब क्या हुआ कि अग्नि को भी प्राण वायु (आक्सीजन) की आवश्यकता थी। अग्नि वहीं पर रह सकती है जहाँ पर वायु है। क्योंकि अग्नि को श्वास लेने के लिए वायु चाहिए। वायु नहीं तो दीपक बुझ जायेगा। सिद्ध हो गया न कि अग्नि जीव है। अगर जीव नहीं होता तो क्यों बुझती। अर्थात् श्वास के लिए वायु चाहिए। सिद्धि हो गयी न एक सिम्पल उदाहरण से। आगम को विधिवत् सिद्ध करने से सिद्धि हो जाती है। अतः अपने आगम को अच्छे ढंग से सिद्ध करने में प्रयत्न किया करें। अपना पुण्य ही है जो हमें ऐसे तर्कों को अपने चिन्तन में लाता है फिर कहीं पर भी शंका नहीं रह पाती है। बस, इसी के लिए यह संगोष्ठी हुई है।

अब यहाँ म्लेच्छ खण्ड के सम्बंध में विचार करते हुए कहा जा रहा है कि उसे जघन्य भोगभूमि नहीं मान सकते हैं क्योंकि म्लेच्छ खण्ड में चतुर्थ काल के समान ही उत्सेध वगैरह पाया जाता है। चतुर्थकाल के शुरु से अन्त तक के समान परिवर्तन होता रहता है। वहाँ षट्कर्म व्यवस्था नहीं है, जैसे कि यहाँ असि, मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या होती है वैसी व्यवस्था वहाँ नहीं है। इसलिए हम उसको आर्यखण्ड भी नहीं मानते हैं। कर्मभूमि होते हुए भी हमारे आर्यखण्ड जैसे कर्म वहाँ नहीं है। क्योंकि ज्यादा हिंसा आदि में प्रयुक्त रहते हैं वे लोग।

लेकिन एक विशेष बात यह कहनी है मुझे कि वहाँ के जो मनुष्य हैं वे आर्यखण्ड में आकर के शिक्षित, प्रशिक्षित होकर व्रत, संयम भी धारण कर सकते हैं। जब जयधवला की वाचना चल रही थी (पपोराजी में) तब आचार्यश्री के मुख से सुना था कि चक्रवर्ती बत्तीस हजार रानियों को वहाँ से लाता है। बत्तीस हजार आर्यखण्ड सम्बंधी, बत्तीस हजार विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों में रहने वाले विद्याधरों सम्बंधी और बत्तीस हजार म्लेच्छ खण्ड सम्बंधी, ऐसी छयानवें हजार रानियाँ होती हैं। उनको जैन धर्म के संस्कार देने के बाद विवाह रचाता है अन्यथा नहीं। अब उनके रहने की बात अलग है, कौन-से महल में रहती होंगी इसकी शंका न करें। क्योंकि शंका होने के बाद समाधान नहीं मिले तो लोगों को अश्रद्धा हो जाती है। इसलिए समाधान दे रहा हूँ कि वे रानियाँ यहीं एक जगह ही आती होंगी। ऐसी कोई आवश्यकता नहीं है। लेकिन आप लोग फिर सोचेंगे कि एक जगह नहीं रहेंगी तो क्या मतलब रहा रानी बनने से? चक्रवर्ती कैसे जायेगा, रोज-रोज उनके पास? किन्तु यह ध्यान रखना कि चक्रवर्ती के पास एक विशेषता रहती है कि वह विक्रिया शक्ति वाला होता है। वह छयानवे हजार रूप बना लेता है और प्रत्येक रानी के पास जाकर उन्हें संतुष्ट करता है मूल रूप तो पट्टरानी के पास रहता है। इसलिए इनमें शंका करने की बात नहीं, आपको अश्रद्धा न हो इसलिए मैंने कहा है और जब छयानवे हजार रूप बना लेता है; सबके पास पहुँच जाता है तब सबको लगता है कि मेरे सामने ही चक्रवर्ती खड़ा है। म्लेच्छ खण्ड के जो मनुष्य हैं वे यहाँ आकर के जैन बनकर संयम भी धारण कर सकते हैं और संयम धारण करते ही उनकी विशुद्धि यहाँ के संयमियों से भी ज्यादा होती है भले ही दूसरे समय में विशुद्धि यहाँ से भी कम हो जाती है। यह प्रकरण भी आचार्यश्री के मुख से ही सुना था। अच्छा एक बात और कहूँ कि जो विजयार्ध की श्रेणियाँ हैं उन श्रेणियों से आज भी मोक्ष हो रहा है। क्योंकि वहाँ आर्यखण्ड है, भरतक्षेत्र है। विजयार्ध पर्वत या उनकी श्रेणियों में चतुर्थ काल जैसा वातावरण है, आज भी वहाँ मुनि बन रहे हैं। कई विद्याधर तो विदेह क्षेत्र जाकर दीक्षा लेकर फिर विद्याओं का प्रयोग न करते हुए क्योंकि विद्यायें परिग्रह हैं; चारण ऋद्धि प्राप्त करके वहाँ से विजयार्ध पर्वत आते होंगे और लोगों को दीक्षा देते होंगे, कारण कि वहाँ पर उत्तम संहनन भी होने से आज भी मोक्ष जाने में कोई बाधा नहीं। वहाँ विद्यायें प्राप्त होती हैं। यहाँ पर तो जब रावण, हनुमान, जैसे विद्याधर रहते थे और यहाँ से हनुमान आदि मोक्ष भी गये लेकिन आज यहाँ पर आयु वगैरह कम हो गयी और पुण्य भी कम हो गया, इसलिए वे यहाँ पर नहीं आते। साक्षात् रूप से नहीं आते पर कभी-कभी निकलते होंगे जैसे उड़नतश्तरी के बारे में कहा था मैंने कि- उड़नतस्तरी क्या है? कोई देव का विमान है या विद्याधर का विमान हो सकता है ऐसे तो कई वैज्ञानिकों ने खोज की है। उड़नदश्तरी को देखा है जो कोई विमान सदृश है, बहुत तेज भागता है वह उन्होंने उसके पीछे अपनी शक्तियों को छोड़ा लेकिन नहीं पकड़ पाये उसको पकड़ने में अपनी शक्तियाँ नष्ट हो गयी। क्या चीज है वह, एक बार और चर्चा हुई थी विज्ञान में विशेष रुचि रखने वालों से, तो उन्होंने कहा था कि विज्ञानी लोगों ने उत्तर दिया है कि वह विशेष विमान है, विशेष शक्तियाँ हैं उनके पास, विशेष जगह पर रहते हैं वे, हम वहाँ पर अभी तक नहीं पहुँच सके। उसको खोजने में कई वर्ष लग जायेंगे। अभी तक समर्थ नहीं है उसको समझने में। इसका मतलब वे कौन होंगे? मैं समझता हूँ कि स्वर्ग के विमान तो आते नहीं है पंचम

काल में, हो सकता है कि वह भवनत्रिक के देवों का विमान हो अथवा किन्हीं विद्याधरों के विमान हो सकते हैं क्योंकि उनके पास विशेष शक्तियाँ भी हैं। अभी वे पंचमकाल में दिखते नहीं है। और अतिनिकट जाने पर आपके विमान को नष्ट भी कर सकती हैं उनकी शक्तियाँ। इसलिए लगता है कि विज्ञानी बहुत पीछे हैं अभी। इन सब चीजों के बारे में अनभिज्ञता है उन्हें अतः हमारे विद्याधरों एवं देवों के विमानों को वे नहीं जान पा रहे हैं न उनकी पूर्ण खोज कर पा रहे हैं। पहले वैज्ञानिक लोग एक सूर्य, एक चाँद मानते थे फिर दो सूर्य, दो चाँद मानने लगेंगे और धीरे-धीरे वे हमारी ओर आते ही जा रहे हैं। पहले वे जिसको परमाणु कहते थे अब उस परमाणु को भी भेद कर दिया है फिर पहले वाला तो परमाणु स्कन्ध ठहरता है। पहले कह रहे थे कि एक बूँद पानी में 36, 450 जीव होते हैं फिर आज इलेक्ट्रानिक माइक्रोस्कोप आ गया है उससे बता दिया है कि एक बूँद पानी में पाँच लाख (5,00,000)जीव हैं। इसका मतलब अभी का निर्णय, वास्तविक निर्णय नहीं है आगे और भी सूक्ष्मता पर पहुँचेंगे किन्तु हमारे जैनदर्शन में तो कहा है कि एक बूँद पानी में असंख्यात जीव होते हैं। और परमाणु वह है जो आँखों से नहीं दिख सकता; चाक्षुष नहीं है वह।

वैसे तो हम परमाणु के विषय में पढ़ सकते हैं, ज्ञान भी कर सकते हैं लेकिन प्रत्यक्ष ज्ञान से ही देख सकते हैं उसे। अवधिज्ञान से भी जाना जा सकता है, ऐसा मेरा एक चिंतन है। कौन सम्यग्दृष्टि? कौन मिथ्यादृष्टि? इसको कौन-सा ज्ञान जान सका है? केवलज्ञान तो जानता ही है चलो, मनः पर्याय ज्ञान भी जान जाय। मन सम्बंधी सब कुछ जान जाय। लेकिन मेरा एक चिंतन ऐसा है जिसे सुनिये कि परमाणु को अवधिज्ञान भी जान सकता है क्योंकि परमाणु रूपी है और वह परमाणु भी स्कन्ध बन जाता है जैसे कुछ कर्म परमाणु रूप स्कन्ध बन जाते हैं तक यह व्यक्ति सम्याग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है आत्मा इसमें कौन सी वर्गणाओं का बन्ध हुआ है ऐसा यह अवधिज्ञान का विषय हो सकता है। अवधिज्ञान भी विभिन्न प्रकार का होता है, ऐसे देशावधि, परमावधि, सर्वावधि। सभी प्रकार के अवधिज्ञान उसे जानते हैं ऐसा नहीं बोल रहा हूँ। लेकिन ऐसी चर्चाओं के माध्यम से ऐसे ही अच्छे-अच्छे नवनीत के समान विषय खुलते हैं। अतः मेरी भावना यह है कि इस संगोष्ठी का जो विषय है वह पूरे भारत में एक नया विषय रहे। आज के लोग अनभिज्ञ हैं इन विषयों से। भोग भूमि, कर्म भूमि क्या है? ज्योतिष मण्डल क्या है? नवग्रह पूजा के लिए निषेध करते हैं हम लोग क्योंकि वहाँ पर तो सरागी देवी, देवता हैं उनके आदर के लिए ज्योतिष का विषय नहीं रखा गया है। लेकिन वहाँ की व्यवस्था क्या है? जो कि आज का विज्ञान सीमित ही जानता है और उसकी सूक्ष्मता को तो जानता नहीं, परंतु इस विषय पर चिन्तनकर हम लोग सच्चा ज्ञान कर सकें। और सभी यहाँ पर जो नवनीत निकल रहा है ऐसे मन्थन का यह नवनीत सारे भारत को और विश्व को मिलना चाहिए। इसलिए यहाँ की समाज ने एक संकल्प किया है कि इन संदर्भों की हम एक पुस्तक बनायेंगे। अच्छा है बहुत ही अच्छा है जिससे समूचे भारत में जैन धर्म की अच्छी प्रभावना हो यही मेरी भावना है।

क्रमशः ....

श्री वर्धमान अतिशय क्षेत्र डेरा पहाड़ी

मुनि श्री आर्जवसागर महाराज

छन्द - ज्ञानोदय

श्री वर्धमान क्षेत्र जगत में, प्रभुका अतिशयकारी है।
भव्य मनोहर डेरा पहाड़ि, महिमा जिसकी न्यारी है॥
यहाँ साधुगण पूर्वकाल में ध्यान साधना करते थे।
अतः साधु की सेव हेतुजन, डेरा डाले रहते थे॥

महावीर की प्रतिमा सुन्दर, शिल्प अनौखा मनहारी।
अजितनाथ की प्रतिमा भी वह, जन-जन की है अघहारी॥
शांतिनाथ का जिन मंदिर वह, महाशान्ति की सौरभ से।
महकाता है भव्यजनों को, गाते गुण तव गौरव से॥

आदिनाथ का समवसरण जो, सब कष्टों का नाशक है।
महापुण्य से भरे सभी को, रमता जहाँ उपाशक है॥
मान गलाने वाला मानस्तम्भ गगन को चूम रहा।
ऊँचे-ऊँचे शिखर बने हैं, घण्टों का स्वर गूँज रहा॥

बाहुबली की प्रतिमा सुन्दर, ऊँचे आसन पर शोभे।
त्याग, तपस्या की शिक्षा दे, कर्म कलंक सभी धोवे॥
ऊँचा टीला वन वृक्षों से, शोभे जंगल में मंगल।
देता शान्ति भविक जनों को, पाता ध्यानी सुख मंगल॥

पंच महा कल्याणक बोली, पात्र चयन था मंगलमय।
मानस्तम्भ बिम्ब प्रतिष्ठा, कलशारोहण मंगलमय॥
ध्यान साधना, प्रवचन मौका, और पढा है तीर्थोदय।
सारे भव्यों ने व्रत लेकर, मंगल पाया ज्ञानोदय॥

छत्रसाल राजा की नगरी, छतरपुर को याद करें।
खजुराहो भी कला क्षेत्र है, जहाँ साधु वे पाप हरें॥
देश विदेशी अपने हिय में, जहाँ मनोहर दृश्य भरें।
डेरा पहाड़ि वीर विराजे, हमें मोक्ष सुख पूर्ण वरें॥

जैनी श्रावक ने है देखो, भक्ति से शक्ति पायी।
देवगणों ने नभ में यात्रा, की थी वर्षा बर्षायी॥
व्रत वैभव की भावना भातें, वे भवि अतिशय सुख पाते।
धर्म भाव पूरे हो जाते, पुण्य खजाने भर जाते॥

जितने भी साधु जन आते, भव्य लगन से सेवक हैं।
यही वसें कहते हैं श्रावक, आप ही नैया खेवक हैं॥
यहाँ क्षेत्र के परिसर में बहु-जैनों का समुदाय रहा।
घर-घर में मंगलाचार सह-शब्दों में जय गूंज रहा॥

छंद-दोहा

डेरा पहाड़ि क्षेत्र पर, महावीर का नाम।
लेते ही सब क्लेश भग-जाते, बनते काम ॥
वर्धमान इस क्षेत्र पर, फाल्गुन पूनम वीर।
पच्चीस सौ चौतीस में काव्य झरा शुभ नीर॥
शीतकाल की वाचना, मानस्तम्भ सुकान।
कलशारोहरण पर श्री, वर्धमान शुभ नाम॥
दे अतिशय इस क्षेत्र को, डेरा पहाड़ि धाम।
कहते हैं, सब कहे, ''आर्जव'' हों शुभ काम ॥

फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा, दिनांक 21/3/2008
स्थान : डेरा पहाड़ि छतरपुर (म.प्र.)

जाते हो लाल जाओ

-शिखर चन्द जैन (पथरिया)

जाते हो लाल जाओ पर इतना ध्यान रखना ।
जिस पथ पर कदम रखा, आगे बढ़ते जाना ॥

चंदन के पलने में , मखमल पर सोये थे।
कंकड़ गड़ जाये तो, मखमल न याद करना॥
जाते हो लाल जाओ पर इतना ध्यान रखना।
जिस पथ पर कदम रखा आगे बढ़ते जाना॥

माता की लोरी सुन, पलकें झपकी होंगी।
कभी याद आये उनकी, जिनवर लोरी सुनना॥
जाते हो लाल जाओ पर इतना ध्यान रखना।
जिस पथ पर कदम रखा आगे बढ़ते जाना॥

वैराग्य का पथ दुर्गम, परीषह के पर्वत हैं।
धीरे-धीरे बढ़ना, समता से काम लेना॥
जाते हो लाल जाओ पर इतना ध्यान रखना।
जिस पथ पर कदम रखा आगे बढ़ते जाना॥

THE CYBERNETICS IN JAINA KARMA THEORY

Dongaonkar Ujwala, Singh K**, Jain L.C ****

* *Department of Physics, Nagpur University, Nagpur*

** *Vice- chancellor Amaravati University, Amaravati.*

*** *Acharya Vidyasagara Research Institute, Jabalpur*

ABSTRACT

The Gommaṭasāra [1-2] is a text in the Digambara Jaina School of Sciences compiled by Nemicandra Siddhāntacakravarti (c.10th century A.D.) which has been commented upon by Kesava Varṇī (c. 14th century A.D.) in Sanskrit. The verses 46-57 contain mathematical treatment of three types of operational activities (Karaṇas). This paper contains various types of sequences of effective phases (parināmās) of the bios summed up as arithmetical series using two types of formulae. The treatment of the sequences is given through numerical and algebaric symbolism.

KEY WORDS

Ananta apūrvakaraṇa, anivṛttikaraṇa, antarmūhurata, pracaya, saṁkhyāta, asaṁkhyāta, pradeśa, aṅkasaṁḍṛṣṭi, vṛddhipramāṇa, saravadhana, ūrdhvaracanā, pracayadhana, labdha, antyadhana, caya, abhyasta, dvicarama, anukṛṣṭiracana.

INTRODUCTION

The description of the units and the mathematical preliminaries needed for the study of the Karma theory can be obtained from the Trilokasāra. The Gommaṭasāra Jīvakāṇḍa[2] describes the manipulation with various types of sets related with the bios. Then the Gommaṭasāra Karmakāṇḍa[3] elaborates the sets related with the Karmic role, creation of Karma and its various states. The Labdhisāra[4-5-6] gives the final version of the annihilation theory of Karma culminating in the paragon form of the bios. Actually the study is about the optimization of the Karma to its best output, and then the achievement of the eternal powers of the bios in its paragon form through annihilation of Karma.

Cybernetics implies the theoretical study of the control process in any scientific system like electronic, biological, or mechanical, etc.[12] The information era has started since 1990. American mathematician, Norbert Winner defines it as the science of control and communication in animals and machines.

To achieve the freedom (mokṣa) from the cycles of births and rebirths the bios must attain the first subsidence serenity (samyaktva) through the three consecutive operations[4]. The attainments are given as follows:

SEQUENCES IN THE FIFTH OPERATION - ATTAINMENT

For the achievement of freedom (mokṣa) from the cycles of births and rebirths the bios must attain the first subsidence serenity (samyaktva) through the three consecutive operations.

1. *The annihilation-cum-subsidence (kṣayopaśama) attainment*

2. The depuration (viśuddhi) attainment
3. The guidance (deśana) attainment
4. The practicability (prāyogyā) attainment
5. The operation (karaṇa) attainment

The operations require that the bios go on attaining the higher levels of depuration, The operational attainment is of three types: For the operational attainment, the bios is unable to undertake serenity (samyaktva) of the first-subsidence type, if there happens to be maximal or minimal life-time bond and maximal or minimal life-time energy and particles (pradesas) in states (sattvas).

1. The low tended operation (adhaḥpravṛtta karaṇa) - LTO
2. The unprecedented operation (apūrva karaṇa) - UTO
3. The invariant operation (anivṛtti karaṇa) – ITO

4.2.1 THE LOW TENDED OPERATION– LTO

The bios may be in synchronized phases at different times of their starts[8]. The one who had started earlier may overcome by the one who had started passing into the LTO phases later.The LTO can be explained by taking the numerical example.

Let, Sarva dhana(total sum)= 3072, gaccha(number of items)=16

ādi(first term)=162, caya (common difference) = 4, caya dhana = 480

This is the subject of summation of an arithmetical progression in which the effective phases of the bios increase, called as depurificator phases (viśuddhi pariṇāmas). This has been dealt with as saṁkalita parikarma by Mahāvīrācārya (c.9th century A.D.) in his Gaṇitasāra Saṁgraha. [7] Yativṛṣabhācārya (c.5th century A.D.) has also treated these in details in his Tiloyapaṇṇatti. [8]

Sum of the arithmetical progression = (number of terms) (first term) +1/2 (number of terms -1) (number of terms) (common difference)

= (16) (162) +1/2(16-1) (16) (4) =3072

Common Difference = (sum)/ (square of number of terms)/numerate

= (3072) / (16X16)(3) = 4.

Sum of common differences = ½ (common difference) (number of terms-1) (number of terms)

= ½ (4) (16-1) (16) =480

Sum of the series - (number of terms) (first terms)= 3072 - (16) (162) = 480

First term= (sum of the series - sum of the common differences/ (number of terms)

= (3072 - 480) / (16) =162

Thus the series appears in the following form:

162+166+170+174+178+182+186+190+194+198+202+206+210+214+218+222=3072

PROTRACT (ANUKṚṢṬI) STRUCTURE:

The following gives the treatment of the protract (anukṛṣṭi) structure of the above series of phases of the bios from the Table I

Table I THE PROTRACT STRUCTURE

	Instant phases	First section	Second section	Third section	Fourth section
1.	16	54	55	56	57
2.	15	53	54	55	56
3.	14	52	53	54	55
4.	13	51	52	53	54
5.	12	50	51	52	53
6.	11	49	50	51	52
7.	10	48	49	50	51
8.	9	47	48	49	50
9.	8	46	47	48	49
10.	7	45	46	47	48
11.	6	44	45	46	47
12.	5	43	44	45	46
13.	4	42	43	44	45
14.	3	41	42	43	44
15.	2	40	41	42	43
16.	1	39	40	41	42

From the 162 phases the 39 phases at the beginning are non -repetitive. The phases of the remaining second, third and fourth section are repetitive, because relative to the various bios the phases of these second, etc., sections are found at the second instant. The phases of the second and third sections are found at the third instant and those of the fourth section are found at the fourth instant.

For the comparability of the infinite multiple of the energy level of the phases-sets, the table II is explanatory.

On dividing the vertical common difference (ūrdhva caya) by this number of terms one gets 4/4=1, which is the common difference for the protract structure. The sum of the common differences for the protract is given by the same formula.

½ (number of terms - 1) (number of terms) (common difference) = ½ (4-1) (4) (1) = 6.

The first piece is obtained by the same formula for finding out the first term

(Total sum - sum of the common differences) / (number of terms) = (162 -6) /4=39, which gives the first term of the first section of the protract.

The first term of the LTO series is regarded as the total sum of the first protract piece. In order to find out the rest of the terms the first is gradually increased by the common difference. This gives an example of a structure lying within a broader structure for a series or a sequence, furnishing the concept of a set contained in another.

Let us take the structure of the goad (aṇkuśa) which is given by

40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54
55
56

The structure of the plough (lāṅgala) which is given by

40
41
42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56

The above structure shows that these sets of phases are not similar or identical to those which

Table II ENERGY LEVEL OF THE PHASES

	Measure of phases	*First section*	*Second section*	*Third section*	*Fourth section*
1.	*162*	*39*	*40*	*41*	*42*
2.	*166*	*40*	*41*	*42*	*43*
3.	*170*	*41*	*42*	*43*	*44*
4.	*174*	*42*	*43*	*44*	*45*
5.	*178*	*43*	*44*	*45*	*46*
6.	*182*	*44*	*45*	*46*	*47*
7.	*186*	*45*	*46*	*47*	*48*
8.	*190*	*46*	*47*	*48*	*49*
9.	*194*	*47*	*48*	*49*	*50*
10	*198*	*48*	*49*	*50*	*51*
11	*202*	*49*	*50*	*51*	*52*
12	*206*	*50*	*51*	*52*	*53*
13	*210*	*51*	*52*	*53*	*54*
14	*214*	*52*	*53*	*54*	*55*
15	*218*	*53*	*54*	*55*	*56*
16	*222*	*54*	*55*	*56*	*57*

belong to those instants which are above the corresponding instants. The sum of these phases is 912. Out of the 3072 phases of the LTO the above 912 phases are said to be non-repetitive. The remaining is called repetitive. During the period of the LTO all the sections corresponding to the last instant and the first section comparing those from the first instant up to the last are not similar to those all sections which are corresponding to the phases corresponding to the instants.

In the table III, the numbers from 1 to 16 denote the instants duration of the LTO. The section numbers from 1 to 4 denote the beginning of a new dissimilarity of phases of different sections in instants (nirvargaṇākāṇḍaka). The explanation is given through a phenomenon of the decrease and increase at six stations as a divisor or multiple.

Table III PHASES OF DIFFERENT SECTIONS

	Instant number	*Minimal phases*	*Maximal phases*	*Instant number*	*Section*
1.	*1*	*1*	*39*		
2.	*2*	*40*	*79*		
3.	*3*	*80*	*120*		
4.	*4*	*121*	*162*	*1*	*I*
5.	*5*	*163*	*205*	*2*	*I*
6.	*6*	*206*	*249*	*3*	*I*
7.	*7*	*250*	*294*	*4*	*I*
8.	*8*	*295*	*340*	*5*	*II*
9.	*9*	*341*	*387*	*6*	*II*
10.	*10*	*388*	*435*	*7*	*II*
11.	*11*	*436*	*484*	*8*	*II*
12.	*12*	*485*	*534*	*9*	*III*
13.	*13*	*535*	*585*	*10*	*III*
14.	*14*	*586*	*637*	*11*	*III*
15.	*15*	*638*	*690*	*12*	*III*
16.	*16*	*691*	*744*	*13*	*IV*
17.			*799*	*14*	*IV*
18.			*825*	*15*	*IV*
19.			*912*	*16*	*IV*

The total sum of the phases is given to be '$L^3 d^s$ which is innumerate universes of points-set where a point is the space occupied by Paramāṇu. The LTO has a duration of an inter-muhūrta which is given by Asss which is the number of terms given by instants contained in the expression. The instant is defined by the motion of an ultimate particle in traversing a space-point (pradeśa) or in moving from a space-point to another space-point.

Naturally this appears to be with a minimal possible velocity as the same Paramāṇu could traverse a distance of L, a universe-line, during the same indivisible instant (avibhāgī samaya). This number of terms Asss is squared and multiplied by "the value of any numerate".

Common Difference = (sum of the series) ÷ {(A sss)^2 (s)}

= (L^{3}a)÷{(A sss)^2 ()} I

The sum of the common differences is calculated by the following formulas :
Sum of the common differences = ½(common difference)(number of terms - 1)(no. of terms)

=½(L^{3}a)÷{(Asss)^2(s)}(Ass-1)(Asss) II

Sum of the common differences = (sum of the series) - (number of terms)(first term)
First term = (sum of the series - sum of the common differences) ÷ (number of terms)

= {L^3 a - ½ (L^3 a)(A sss - 1) ÷ {(A sss) (s) }÷ (A sss)

= ½ {L^{3}a(1+A sss (2s - 1)}÷ (A sss)(A sss)(s)} III

This gives the quantum of effective phases (pariṅama puñja) corresponding to the first instant. This quantum is also called the depurator (vīśuddhi).

When we add to this first term the common differences we get the second term of the series.

Second Term = ½ {L^3 a (3 +A sss (2 s - 1)}÷ (A sss)(A sss)(s)}

Similarly,

The last but one term = ½ {L^3 a(A sss (2 s + 1)- 3}÷ (A sss)(A sss)(s)}

The last term = ½ {L^3 a(A sss (2 s + 1)- 1}÷ (A sss)(A sss)(s)}

In order to find out the protract structure in the algebraic symbolism (artha saṁdṛṣṭi) we treat the first term of the series as the total sum of the first piece of the protract structure, corresponding to the first instant and so on. This is given by

= ½ {L^3 a(1 +A sss (2 s - 1)}÷ (A sss)(A sss)(s)}

The number of terms for this protract piece is obtained by dividing the number of terms, Asss of the another series by the numerate s getting the result as Ass.Then the common difference of the first instant protract piece is given on dividing the vertical common difference, (L^{3}a) ÷ {(A sss)^2(s)} of the another series by the number of terms of the first instant piece of the protract, A ss, getting (L^{3}a)÷{(A sss)^2(s)(A ss)}. For this, the formula is :

Protract common difference =(vertical common difference)÷(LTO period ÷ numerate)

Further, the sum of the common differences for the protract first instant piece is given on multiplying the common difference by one half of the number of terms as reduced by unity and again by the number of terms as follows :

= ½ {L^3 a)(A ss - 1)(A ss)÷ {(A sss)^2(s)(A ss)}

This may be written on reduction = ½ {L^3 a)(A ss - 1) ÷ {(A sss)^2(s)}

Now the first piece of the protract corresponding to the first instant is

= (total sum - sum of common differences) ÷ (protract number of terms)

= [½ {L^3 a(1 +A sss (2 s -1)} ÷ {(A sss)(A sss)(s)}- ½(L^{3}a)(A ss - 1) ÷ {(A sss)^2(s)}]÷ (A ss)

$= \frac{1}{2} \{L^3 a(2 + A\ sss\ (2s-1) - 1\} \div \{(A\ sss)(A\ sss)(s)(A\ ss)\}$

When the protract common difference is added to the above piece we get the measure of the second piece $= \frac{1}{2} \{L^3 a(4 + A\ sss\ (2s-1) - 1\} \div \{(A\ sss)(A\ sss)(s)(A\ ss)\}$

Similarly, the third and the following pieces could be obtained by addition of the protract common difference one by one.

The last piece is given by the formula for finding out the last term. For this purpose the first is added by the protract common difference and the protract number of terms as reduced by unity. This is given on calculation

$= \frac{1}{2} \{L^3 a(A\ sss\ (2s+1) - 1\} \div \{(A\ sss)(A\ sss)(s)(A\ ss)\}$.

In order to find the last but one piece, the above is reduced by a protract common difference. On calculation this is obtained as

$= \frac{1}{2} \{L^3 a(A\ sss\ (2s+1) - 1\} - 2\} \div \{(A\ sss)(A\ sss)(s)(A\ ss)\}$.

Now whatever is the symbolic expression for the second piece corresponding to the first instant, that becomes the symbolic expression for the first piece corresponding to the second instant. This could also be obtained independently as

= (effective phase quantum corresponding to the second instant - common difference) ÷ (protract number of terms)

$= \frac{1}{2} \{L^3 a(4 + A\ sss\ (2s-1) - 1)\} \div \{(A\ sss)(A\ sss)(s)(A\ ss)\}$

The second piece is obtained by adding the protract common difference to the above,

$= \frac{1}{2} \{L^3 a(6 + A\ sss\ (2s-1) - 1)\} \div \{(A\ sss)(A\ sss)(s)(A\ ss)\}$

In this way, on adding the protract common difference to the successive pieces we get the last piece on adding the common difference as many times as is the number of terms as reduced by unity, given as equal to $= \frac{1}{2} (L^3 a)\ [A\ sss\ (2s-1) + 1\} + 2] \div \{(A\ sss)(A\ sss)(s)(A\ ss)\}$

If we subtract the protract common difference we get the last but one piece corresponding to the second instant as $= \frac{1}{2} (L^3 a)\ [A\ sss\ (2s-1) + 1\}] \div \{(A\ sss)(A\ sss)(s)(A\ ss)\}$

In this way, finding the sections corresponding to the successive instants for the protract structure. At the last instant the total number of the effective phase's quantum is found to be

$= \frac{1}{2} (L^3 a)[A\ sss\ (2s+1) - 1] \div \{(A\ sss)^2(s)\}$

From the above the protract sum of the common differences as divided by the protract period is subtracted in order to get the protract first section corresponding to the last instant as

= [(total sum of all the quanta of effective phases corresponding to the last instant) - (sum of the protract common differences)] ÷ (period of the protract)

$= \frac{1}{2} (L^3 a)[A\ sss\ (2s+1) - 1\}] \div \{(A\ sss)^2(s)(A\ ss)\}$

The second section is obtained on adding the protract common difference to the above

$= \frac{1}{2} (L^3 a)[A\ sss\ (2s+1) - 1\} + 2] \div \{(A\ sss)^2(s)(A\ ss)\}$

Following the similar sequence, the last piece corresponding to the last instant is obtained by adding the product of protract common difference and the number of terms as reduced by unity, to the first section $= \frac{1}{2} (L^3 a)[A\ sss\ (2s+1) + 1\} - 2] \div \{(A\ sss)^2(s)(A\ ss)\}$

The last but one piece corresponding to the last instant is given by subtracting the protract common difference from the above expression, getting it as

= ½ $(L^3$ a)[A sss (2 s+1)+ 1}- 4] ÷ {(A sss)^2(s)(A ss)}

Now the first section corresponding to the last but one instant

= (first section corresponding to the last instant) - (protract common difference)

= ½ $(L^3$ a)[A sss (2 s+1)- 1}- 2] ÷ {(A sss)^2(s)(A ss)}

From the above it is evident that the quantum of effective phases of the least protract piece corresponding to the first instant is= 1/2 (L^3a) [A ss{ s (2 s - 1) - 1}- 2] ÷ {(A`)^2(s)(A ss)}.

On reduction, the above amount appears as= (L^3a) ÷ (F^3 s)

The above is the number of the quantum of effective phases. There is the six stations (sat sthana) decrease increase after the lapse of {(F + 1) ÷ a}^{5} stations (sthanas), hence the six stations in the above effective phases quantum will be = (L^3a) ÷ [(F^3 s){(F + 1) ÷ a}^{5}]

THE UNPRECEDENTED OPERATION (UTO)

The bios must be in synchronized phases at different times of their starts[8]. The one who had started earlier never overcome by the one who had started passing into the UTO phases later. Firstly the UTO is dealt through the numerical symbolism.

Table IV

Instant	Effective phases
8	553-568
7	537-552
6	521-536
5	505-520
4	489-504
3	473-488
2	457-472
1	456-001

Total sum of the effective phases = 4096

Total duration of the activity= 8 instants (number of terms), Numerate (saṁkhyāta)= 4

Hence, the common difference =(all fluents)/(number of terms) (numerate)= (4096) ÷ {(8)^2 (4)} = 16

The sum of the common differences

= (common difference) 1/2(number of terms - 1)(number of terms)= (16) 1/2(8 - 1)(8) = 448

First term = {sum of all effective phases) – (sum of common differences)} ÷ (number of terms) = (4096 - 448) ÷ (8) = 456

On adding the common difference to the above, one by one, we get the following terms of the series.

The table V is given for the UTO is given as follows:

Table V

Instant	Phases	Total of new phases
1	1 to 456	456
2	457 to 472	928
3	929 to 488	1416
4	1417 to 504	1920
5	1921 to 520	2440
6	2441 to 936	2976
7	2977 to 552	3528
8	3529 to 568	4096

1/2[(L^3a)(L^3a) ÷ {(Ass)(s)}] (Ass- 1)

The following table explains another aspect of the UTO : The set of effective phases corresponding to the last but one instant is given by subtracting a common difference from the above getting it as

= 1/2(L^3a)(L^3a) [Ass{2 (s) + 1} - 3] ÷ {(Ass)(As s)(s)} asa

There is no structure for the protract.

THE INVARIANT ACTIVITY (ITO):
In case of the invariant activity, there is no common difference. Its duration is only numerate trail (saṁkhyāta āvali) whose symbol is A s.

REFERENCES AND NOTES:-

1. ***Muktar R.C.and Patani C.P., The Trilokasāra of Ācārya Nemicandra Siddhāntacakravartī, Shree Mahaviraji Publication, Mahaviraji (1976)***
2. ***A.N. Upadhye and K. C. Siddhāntācārya, The Gommaṭasāra (Jivkāṇḍa karmakāṇḍa) of Ācārya Nemicandra Siddhāntacakravartī, New Delhi, Vol. 1, 1978.pp. 79-121.***
3. ***G.L. Jain and S.L. Jain,The Gommaṭasāra (Jīvkāṇda and Karmakāṇḍa) and the Ācārya Nemicandra Siddhāntacakravartī, published by Gandhi Hari Bhai Deokarana Jaina Granthamala,Calcutta,1919.***
4. ***Pt. Phool Chandra Siddhāntashastrī, The Labdhisāra of Ācārya Nemicandra Siddhāntacakravartī, Shrimad Rajcandra Ashram,Agas,1980.***
5. ***G. L. Jain and S. L. Jain, The Labdhisāra of Ācārya Nemicandra Siddhāntacakravartī, Calcutta, 1919.***
6. ***Jain, L. C., with assistance of Br. Prabha, The Tāo of Jaina Sciences, Arihant International , Delhi,1992.***
7. ***Jaina ,L. C. with assistance of Ku. Prabha Jain, The Labdhisāra of Ācārya Nemicandra Siddhāntacakravartī,Vol. 1 (INSA Project:1984-1987), Katni, 1994.***
8. ***A.N.Upadhye and H.L. Jain, The Tiloyapaṇṇattī of Yativṛṣabhacarya, ,Sholapur ,Vol. 1 (1943),Vol. 2(1952).***
9. ***L.C.Jain ,The Gaṇitsāra Saṁgraha of Mahvīrācārya, Sholapur, 1963***

KIND ATTENTION OF PUBLISHERS/DONORS IS INVITED FOR THE PUBLICATION OF

"The Mathematical Sciences in the Karma Antiquity",

in **VOLUME (I -V)**

a collection of unique technological & historical material based on INSA(Indian National Science Academy) Project : 1984-1987, The Labdhisāra of Ācārya Nemicandra Siddhāntacakravartī, BY Dr. Prof. L.C. Jain.

CONTACT

ABOVE DIKSHAA JWELLERS, 554, SARAFA WARD, JABALPUR {MOB 9425386179}

स्व. श्री शिखरचंद जी जैन का जीवन वृतांत

यात्रा का प्रारंभ :

मध्यप्रदेश के दमोह जिले के फुटेरा ग्राम से सन् 06/01/1942 में जन्म लेकर पिता श्री आर.के. जैन एवं माता श्रीमती राजरानी जैन को धन्य किया। आप हुकुमचंद, भागचंद, कोमलचंद, शिखरचंद और प्रकाशचंद रूप में पाँच भाईयों में चतुर्थ स्थान के भ्राता थे। आपकी शांतिबाई, चम्पीबाई, शीलाबाई और ताराबाई रूप में चार बहिनें भी थीं। आप ऐसे परिवार में संस्कारित होते हुए एवं परिवार को धन्य करते हुए माध्यमिक शिक्षा पाकर उच्च शिक्षा हेतु दमोह नगर में आये। यहाँ के शासकीय स्नातक महाविद्यालय से बी.ए. परीक्षा उत्तीर्ण करके जबलपुर से बी.एड. की उपाधि प्राप्त की और दमोह जिले में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में उच्च श्रेणी शिक्षक के पद पर नियुक्त हुए। आपने दमोह, तारादेही, बाँसा तारखेड़ा, पथरिया, बाँसा कलॉ आदि में पदस्थ रहकर अनेक विद्यार्थियों को हिन्दी तथा अंग्रेजी की शिक्षा प्रदान की। सन् 1984 में प्रधानाध्यापक बनकर आपने लकलका, मढियादो और पथरिया में अपनी विशिष्ट सेवाएँ प्रदान की।

पारिवारिक जीवन एवं संस्कार :

श्रीमती मायाबाई के साथ तीन पुत्र एवं एक पुत्रीसह आपने अपने पारिवारिक जीवन में परिवारजनों को सदाचार और धार्मिक कर्तव्यों के साथ जैन धर्म के उच्च संस्कारों को प्रदान किया। आपने ज्येष्ठ पुत्र पारस को बी.ए. की शिक्षा का, द्वितीय पुत्र को एम.ए., एल.एल.बी. और पी.एच.डी. की शिक्षा का, तृतीय पुत्र अरविन्द को एम.ए. की शिक्षा का एवं अपनी पुत्री संध्या को बी.ए. की शिक्षा का उत्तम प्रबंध किया तथा धार्मिक गीतों, कविताओं एवं आलेखों को पुस्तक रूप में बनाकर स्वयं अपने मधुर कंठ से गाया और प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। आपकी कृतियाँ - ''**मुक्ति पथ के गीत**'' : भाग एक, दो तथा ''**भावना में वैराग्य**'' विशेष रूप से चर्चित हैं।

तीर्थ क्षेत्रों की यात्रा :

सन् 1973 में आपने अपने करीब 6 वर्षीय सुपुत्र पारस, सुपुत्री संध्या और धर्म पत्नी श्रीमती मायादेवी आदि परिवारजनों के साथ गिरनार, पालिताना (शत्रुंजय), सिद्धवरकूट, बावनगजा आदि तीर्थ क्षेत्रों की लगभग डेढ माह लंबी यात्रा, सन् 1993 में रामटेक, मुक्तागिरि, जिंतूर, धर्मस्थल, कारंजा, श्रवणबेलगोला, गोमटगिरि, गिरनार जी, मांगीतुंगी जी, गजपंथा क्षेत्र की यात्रा भावपूर्वक संपन्न की। कुंडलपुर बडेबाबा धाम तो उनका सबसे प्रिय निकटतम प्रिय स्थल रहा है। जहाँ से हमेशा पारिवारिक संस्कारों की उत्तरोत्तर उन्नति होती रही। आपने सन् 2006 में सम्मेद शिखरजी की भी दो वंदनाएँ विशेष उल्लास के साथ संपन्न की।

परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी का मंगल सानिध्य :

जब आपके सुपुत्र पारस की उम्र लगभग 9 वर्ष की होगी तव आचार्य विद्यासागर जी महाराज अपने लघुसंघ के साथ पथरिया पधारे और मध्य के मंदिर के बांझल सदन में रुके थे। नगर के मुख्य मार्ग पर पंडाल बनाकर प्रवचन आयोजित किया गया था तब प्रवचन के दौरान सह परिवार दर्शनादि का लाभ लिया। लगभग 77-78 में दमोह नगर की जैन धर्मशाला (नन्हे मंदिर जी) में सह परिवार जाकर आचार्य संघ के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त किया।

पारस की वैराग्य परीक्षा एवं आचार्य श्री की सन्निकटता :

सन् 1983 में धर्म संस्कारों से संस्कारित अपने पुत्र पारस को वैराग्य से अभिभूत देखकर मोह के कारण विह्वल चित्त हो गये और पारस जब बिन बोले आचार्य श्री विद्यासागर जी गुरुवर की खोज में सम्मेद शिखर की ओर (ईसरी) चले गये तब बिना कुछ खाये पिये दुखित मन के साथ पारस का पता लगाते रहे और तीव्र मोह के कारण पुत्र को अपने साथ लौटा लिया।

सन् 1984 में जब आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज संघ सहित पिसनहारी की मढ़िया, जबलपुर में विराजमान थे उस समय पुन: पारस के बिना बोले उनके दर्शनार्थ जाने के बाद और आचार्य श्री के सानिध्य में बीस दिन रहने के बाद आप अपने रिश्तेदारों के साथ आचार्य श्री से अपनी पारिवारिक कठिनाईयों एवं जिम्मेदारियों को बतलाकर पुन: पारस को घर ले आये। पारस की वैराग्य की अवस्था के कारण समाज में काफी प्रभावना का एक विषय बन चुका था। जितना पारस का वैराग्य बढ़ रहा था, उतनी उनके वैराग्य की परीक्षा हो रही थी। बहुत अधिक रोके जाने पर भी पारस को वे अपने घर में न रोक सके। पारस बी.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय दमोह से उत्तीर्ण कर चुके थे लेकिन उन्हें न तो लौकिक शिक्षा और न तो व्यापार का क्षेत्र पसंद आया। वे तो मुक्ति मार्ग पर जाना चाहते थे तथा आचार्य श्री के दर्शनार्थ दिसंबर 1984 में पनागर पहुँच गये और शीतकालीन वाचना के समय अपने आप को आचार्यश्री के चरणों में समर्पित कर दिया। उसी समय आप सपरिवार उपस्थित होकर पारस से घर चलने का आग्रह करने लगे लेकिन जब दो-तीन दिन तक पारस ने कोई वार्तालाप नहीं किया तब आपने आचार्य श्री से कहा कि हे गुरुदेव! पारस तो बात ही नहीं करते हैं घर जाने की बात तो दूर है, तब आचार्य श्री ने उत्तर दिया कि आप पारस के पिता होकर भी उसे रोक नहीं पा रहे हैं। वह इतनी छोटी सत्रह वर्ष मात्र की उम्र में वैरागी क्यों बन गया है, इस पर आपने विचार किया? अरे! लगता है कि वह पूर्व जन्म का बड़े धार्मिक संस्कार का ही परिणाम है। मोक्षमार्ग में बाधक बनना उचित नहीं। तब आपने कहा कि ठीक है महाराज अब हम बाधक नहीं बनेंगे, हमने पारस की पूर्ण परीक्षा कर ली है। वे वैराग्य में खरे उतरें हैं। अब उनकी क्या व्यवस्था करना है मुझे बतलाइये? तब आचार्य श्री ने कहा - अब आपको व्यवस्था करना आवश्यक नहीं, समाज सब कर लेगी। अत: 17 दिसंबर 1984 में पारस ने धवल वस्त्रों को धारण कर ब्रह्मचर्य की अवस्था धारण की। आपका अश्रुपात होता रहा, लेकिन अपने ज्येष्ठ पुत्र पारस को जिन स्वरचित गीतों से संस्कार दिया था उन्हीं को गुनगुनाते हुए और नया गीत रचते हुये कि -

जाते हो लाल जाओ, पर इतना ध्यान रखना,
जिस पथ पर कदम रखा, आगे बढते जाना।

अपने नगर पथरिया की ओर वापिस आ गये।

जब पारस ब्रह्मचर्य अवस्था में संघस्थ थे तब खुरई नगर में सन् 1985 में ग्रीष्मकालीन वाचना के समय आप खुरई पधारे और आचार्य श्री का सानिध्य प्राप्त किया।

पारस की क्षुल्लक दीक्षा होने के उपरांत जब वे आर्जवसागर बन चुके थे तब सन् 1985 में आचार्य श्री के दर्शनार्थ नैनागिरि में पधारे और सायं कालीन वैयावृत्ति के समय आचार्य श्री के चरणों में अपने भावपूर्व गीतों की प्रस्तुति इस प्रकार दी - **इक जोगी खीर पकावे, आप पकावे आप ही खावे.......... आदि**

इस प्रकार उन्होने आचार्य श्री का मुस्कानयुक्त पावन आशीर्वाद प्राप्त किया। सन् 1986 में आचार्य श्री का संघ पपोरा जी में विराजमान था तब पपोराजी पधारकर आचार्य संघ एवं मुनि आर्जवसागर जी के दर्शन कर वहाँ कुछ दिन रुककर, चौका लगाकर आपने साधुओं को आहार करवाकर पुण्यार्जन किया। खिमलासा आदि स्थानों पर आचार्यश्री के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त किया। सन् 1989 में आचार्य श्री के मढ़ियाजी, जबलपुर में ससंघ चतुर्मास के दौरान भी वहाँ पहुँचकर कुछ समय व्यतीत करके आपने आहारादि देने और आचार्य श्री का पावन आशीर्वाद पाने का सौभाग्य प्राप्त किया।

सन् 1989 में पथरिया नगर में पंचकल्याणक के समय आचार्य श्री के पथरिया पधारने पर तीसरे दिन ही परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी को पड़िगाहनकर अपने गृह में आहार कराने का सौभाग्य पाया। इसी तरह सन् 1989 में कुंडलपुर बड़े बाबा क्षेत्र में आचार्य संघ के दर्शन करने का पुण्यलाभ अर्जित किया। सन् 2007 में पथरिया पंचकल्याणक के समय आचार्य संघ का प्रवचन एवं साधुओं का अपने चौके में आहार कराकर विशिष्ट पुण्यलाभ अर्जित किया एवं पथरिया नगर में चातुर्मास आदिक के निमित्त पधारे आचार्य श्री के संघस्थ साधुओं एवं आर्यिकाओं की आहारादिक में वैयावृत्ति करने का एवं उनके सामने मुक्त कंठ से कविता पाठ का सौभाग्य पाया।

दक्षिण यात्रा :

पूज्य मुनि श्री आर्जवसागर जी का विहार जब दक्षिण भारत में चल रहा था तब आपने कोपरगाँव में संपन्न हो रहे सन् 1991 के वर्षायोग के दौरान मुनि संघ के दर्शन कर गजपंथा, माँगितुंगी और कुंथलगिरि आदि सिद्ध क्षेत्रों की व पैठन, कचनेर, एलोरा आदि अतिशय क्षेत्रों की तीर्थ यात्रा संपन्न की। सन् 1992 में जब मुनि श्री सांगली में चातुर्मास कर रहे थे तब मुनि श्री के दर्शन के साथ प्रथम बार श्रवणबेलगोला (बाहुबली) की तीर्थ यात्रा की। इसी तरह जब 1993 में मुनि श्री का चातुर्मास श्रवणबेलगोला में था और महामस्तकाभिषेक का पावन अवसर भी आया था तब आपने द्वितीय बार श्रवणवेलगोला एवं निकटवर्ती अनेक क्षेत्रों की वंदना संपन्न की।

मुनि श्री आर्जवसागर जी के तमिलनाडु बिहार के समय और वहाँ पर 7 वर्ष के धर्मप्रभावना के समय में आपने दो बार आचार्य कुन्दकुन्द की तपोस्थली पोन्नूरमलै और श्रुतकेवली आचार्य भद्रवाहु स्वामी के शिष्य विशाखाचार्य के तपोस्थान विशाखाचार्य तपोगिरि, नीलगिरि, सिंजीमलै, तिरुमलै, चित्तामूर आदि एवं समंतभद्राचार्य जी का दीक्षा स्थल कांचीपुरम् और अकलंकाचार्य का समाधि स्थल करंदै आदि स्थानों का दर्शन लाभ लिया। आठ वर्ष पूर्व दक्षिण यात्रा के समय पिच्छिका एवं प्रतिमा लेने की भावनापूर्वक मुनिश्री से सपत्नीक पूर्ण ब्रम्हचर्य व्रत अंगीकार किया था।

भोपाल वर्षायोग और पंचकल्याणक में उपस्थिति :

भोपाल में सन् 2004 में सपन्न हो रहे वर्षायोग के दौरान जब 2 अक्टूबर को मुख्यमंत्री श्री बाबूलाल गौर मुनि श्री आर्जवसागर जी महाराज के दर्शनार्थ पधारे थे तब आपने मंच पर मुख्यमंत्री की उपस्थिति में अपना कविता पाठ किया और कवि सम्मेलन की अध्यक्षता की तथा ऐशबाग में पंचकल्याण के समय भी आपने कविताएँ पढ़कर जन समुदाय का मन जीता।

सम्मेद शिखर की तीर्थ यात्रा :

सन् 2006 में जब मुनि श्री आर्जवसागर जी का संघ दक्षिण भारत से वापिस आकर भोपाल और अशोक नगर

में चार्तुमास करके सम्मेद शिखरजी पहुँचा तब वहाँ पंचकल्याणक के अवसर पर उत्तरप्रदेश प्रकाश भवन के परिसर में चल रहे कार्यक्रम में मुनि संघ के सानिध्य में आपने हजारों श्रद्धालुओं के बीच अपनी कविताओं का पठन किया और पर्वत की सभी टोकों की भाव सहित दो वंदनाएँ करके - एक बार वंदे जो कोई, ताको नरक पशुगति नहीं होई। इस सूक्ति को चरितार्थ किया।

दमोह में सानिध्य :

मुनि श्री आर्जवसागर के ससंघ 2007 के दमोह नगर में आगमन एवं यहाँ संपन्न हुए वर्षायोग में आपने दशलक्षण पर्व के समापन उपरांत पूर्णिमा को विमानोत्सव के दिन अभिषेक के पूर्व जन समुदाय के बीच अपनी कविताओं का पाठ किया एवं सम्पूर्ण समाज को आनंदित करते हुए पंचायत और समस्त जैन समाज से सम्मान पाया। आपके द्वारा रचित साहित्य का विमोचन किया गया और मुनि श्री के करकमलों में साहित्य समर्पित करने का परम सौभाग्य पाया।

जीवन यात्रा का अंतिम चरण :

करीब 63 वर्ष की उम्र में शिक्षा सेवा और धर्म सेवा करते हुए शारीरिक अस्वस्थता में ही धार्मिक चिंतन से स्वस्थता का अनुभव करते हुए शारीरिक इलाज को इंकार करते हुए शरीर छोड़ने के एक सप्ताह पहले पारिवारिक लोगों को यह कहते हुए कि अब मकर संक्रांति नहीं आ जाएगी और 6 जनवरी 2008 को सबसे क्षमा माँगी और सबसे जय जिनेन्द्र करते हुए एवं पेय, भोजन इत्यादि के प्रति अनिच्छा प्रकट करते हुए प्रसन्न मन के साथ बैठने का साहस जुटाया, बेटों ने अपना सहारा देकर उन्हें बिठाया और अपने संबंधियों से धर्मवाणी और णमोकार मंत्र को सुनते हुए धार्मिक चिंतन के साथ देह को विसर्जित कर दिया, मरण को सुमरण बना लिया उन्होंने। वे मानव पर्याय को सार्थक बनाते हुए उत्तम गति की ओर प्रयाण कर गये। मरण महोत्सव सार्थक किया।

आपके दाह संस्कार में नगर पथरिया के प्रतिष्ठित लोगों सहित बड़ी संख्या में जैन, अजैन, व्यापारी एवं शासकीय कर्मचारी उपस्थित हुए। दमोह नगर के प्रतिष्ठित लोगों सहित जैन पंचायत दमोह के मुख्य गणमान्यजन, सागर, जुबेरा, फुटेरा, शाहपुर, बाँसा, गढाकोटा आदि स्थानों से भी भारी संख्या में लोग उपस्थित हुए। प्राचार्य श्री रतनचंद जैन ने स्व. श्री शिखरचंद जी के सदाचारमय जीवन पर प्रकाश डाला तथा दिगम्बर जैन पंचायत के अध्यक्ष श्री विमल लहरी अपने श्रृद्धा सुमन अर्पित करते हुए मुनि श्री आर्जवसागर महाराज की दमोह में हुई अपूर्व प्रभावना को विशेष रूप से रेखांकित किया।

अंतिम यात्रा के समय व्रतियों की उपस्थिति :

देहांत के एक दिन पूर्व जुबेरा से पधारीं व्रती महिला श्रीमती अनीता सिंघई जी (परिवार के संबंधित) से धार्मिक चर्चा कर संबोधा और दूसरे दिन 7 जनवरी 08 को देहांत के समय धार्मिक संपर्क से जुडे हुए एवं सद्गति और समाधिमरण की प्रेरणा देने वाली व्रती श्री धनीराम जी (डी.आर. जैन) दमोह, व्रती राजकुमारी दीदी, व्रती पद्ममालिनी दीदी और प्रतिमाधारी श्रीमति सुधा सिंघई जबेरा की उपस्थिति रही। उन्हीं के मार्गदर्शन में देह का विसर्जन संस्कार किया गया और परिवार को सहानुभूति और धैर्य धारण कराने का उपक्रम संपन्न हुआ।

इति शुभम् भद्रम् भूयात्।

संस्कारधानी एवं मंदिरों की नगरी, जबलपुर में प्रो. एल.सी. जैन (जैन गणितज्ञ) का भव्य सम्मान समारोह

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य अभीक्षण ज्ञानोपयोगी ज्ञान-ध्यान में निरत सिद्धांतवेत्ता मुनि श्री 108 प्रबुद्धसागर जी महाराज के सान्निध्य एवं मार्गदर्शन में श्री 1008 मज्जिनेन्द्र आदिनाथ जिन बिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोदय विश्वशांति महायज्ञ एवं गजरथ महोत्सव जबलपुर के त्रिमूर्ति नगर के मंदिर जी में 7 मार्च से 12 मार्च 2008 के बीच निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न हुआ। पू. मुनि श्री प्रबुद्धसागर जी ज्ञान-ध्यान विद्वता में प्रबुद्ध है। उन्हें विद्वान-प्रेमी कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके ह्दय में विद्वानों के प्रति वात्सल्य की पावन गंगा सदैव प्रवाहित होती रहती है। वे विद्वानों का स्वयं भी सम्मान करते हैं सम्मान करने की समाज को प्रेरणा भी देते है। विद्वानों के सम्मान की यह परम्परा भी धर्म प्रभावना का अभिन्न अंग है। इसी के परिणाम स्वरूप पंचकल्याणक महोत्सव में जबलपुर जैन समाज ने विश्व प्रसिद्ध जैन गणितज्ञ डॉ. प्रोफेसर श्री एल.सी. जैन को जैन समाज की भारी उपस्थिति में उनका सम्मान कर प्रशस्ति पत्र प्रदान किया। प्रशस्ति में उनके प्रति व्यक्त शब्द देखिये - ''आप ज्ञान गुण वैशिष्ठ्य के अगाध अक्षुण्ण एवं अपार कोषालय के अधिपति है, आपने जैन गणित के सूक्ष्म अध्ययन विवेचन एवं विश्लेषण से अंतर्राष्ट्रीय स्तर में वह अनुदान दिया है जो आने वाली सभ्यता के लिये पठनीय पाठशाला की भाँति आदर प्राप्त करता रहेगा।'' सात समुन्दर पार भी जिन्होंने अपनी मेघा शक्ति एवं नवीन अन्वेषणा का लोहा मनवाया है। जैन गणित की ध्वजा फहराने में वर्तमान में वे ही अग्रणी है। जबलपुर जैन समाज ने उनका सम्मान कर अपने को धन्य कर लिया है। धर्म प्रभावना के उपायों में चार चाँद लगा दिये है। भाव विज्ञान पत्रिका परिवार भी ह्दय से महामनीषी वरिष्ठ ज्ञानवयोवृद्ध व्यक्तित्व के दीर्घ जीवी होने की मंगल भावना भाता है। जिससे शेष कार्य को भी वे पूरा कर जैन गणित की दिग्विजयी ध्वजा फहरा सके।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र डेरा पहाड़ी, छतरपुर में

नंदीश्वर द्वीप महामण्डल विधान सम्पन्न

(14 मार्च से 21 मार्च 2008 तक)

परमसान्निध्य प.पू. 108 मुनि श्री आर्जवसागर जी महाराज

अष्टान्हिका महापर्व के मंगल अवसर पर छतरपुर जैन समाज ने अतिशय डेरा पहाड़ी पर नंदीश्वर द्वीप महामण्डल विधान एवं विश्व शांति महायज्ञ का मंगल आयोजन आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य मुनि श्री आर्जवसागर जी महाराज के मंगल सान्निध्य में आयोजित किया। विधान मानव मनीषी ब्र. त्रिलोक जी के विधानाचार्यत्व में सम्पन्न हुआ। समाज की भारी उपस्थिति में क्षेत्र प्रबंधक श्री पदमचंद वासल, सौधर्म इन्द्र श्री प्रेमचंद जी, ईशान इन्द्र श्री सी.सी. जैन, के.सी. जैन, नेमीचंद जैन, कमल जैन, दादा ज्ञानचन्द्र जी आदि महानुभाव भी उपस्थित रहे व धर्म लाभ लिया। श्री जी के जयकारों के साथ मुनि श्री आर्जवसागर जी महाराज के अमृत प्रवचनों का भरपूर लाभ मिला। मुनि श्री की अमृत वाणी से अमृत ऐसे झरा - ''भक्ति के आकाश से ही आनन्द अमृत बरसता है। भक्त का ह्दय क्रोध, मान, माया, लोभ के बादलों से स्वच्छ होकर जब भक्ति की पालकी में बैठकर परमात्मा की आराधना करता है तब जीवन की बगिया में धर्म-ध्यान के फूल खिलते हैं। संगीतकार शोभालाल जी ने भी मधुर स्वर लहरियों से अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये। समाज ने तहेदिल से ब्र. त्रिलोक जी व शोभालाल जी का सम्मान किया।

शिखरचंद जैन के निधन पर शोक

संस्कारों की सुरभि मुनिश्री आर्जवसागरजी के माध्यम से चहुँओर फैल रही है। शिक्षक शिखरचंद जैन ने समाज को संस्कारित करने, अपनी संतान को संस्कारित किया। उन्होंने ऐसा संस्कारित सपूत समाज को सौंपा, जो आज मुनिश्री आर्जवसागर के रूप में पूरे देश में धर्मध्वजा फहरा रहे हैं। उपरोक्त विचार दिगंबर जैन पंचायत के अध्यक्ष विमल लहरी ने पूज्य मुनिश्री आर्जवसागर महाराज के लौकिक जीवन के पिताश्री शिखरचंद जैन के आकस्मिक निधन पर सिविल वार्ड भायजी मंदिर की प्रवचन सभा के बाद श्रद्धांजलि सभा में व्यक्त किये। इस अवसर पर गजरथ आयोजन समिति के संयोजक सुरेन्द्र बनवार, चंद्रकुमार, यूसी जैन, जिला भाजपा के पूर्व अध्यक्ष राजेन्द्र सिंघई, मुख्य चिकित्सा अधिकारी डॉ. अशोक जैन, नरेन्द्र चौधरी, महेश बड़कुल, पदमचंद जुझार, डॉ. आई सी जैन, सुनील बेजीटेरियन, प्रवीण जैन, संजीव शाकाहारी, एसएल गांगरा, एस.के. जैन, राजेश नायक, बीसी जैन, राजेश रज्जन आदि उपस्थित थे।

जैन पंचायत के महामंत्री नरेन्द्र चौधरी, ने कहा कि शिखरचंदजी के निधन से संपूर्ण समाज को आघात पहुंचा है, पर समाज उनका सदैव ऋणी रहेगा। संचालक सुनील बेजीटेरियन ने कहा कि जैन दर्शन और हिंदी कविताओं मुक्ति पथ के गीत 1,2 भावनाओं में वैराग्य जैसी कृतियों के रचनाकार शिखरचंद जी शासकीय सेवा के बावजूद धर्म और समाज की सेवा में तत्पर रहे।

भगवान महावीर आचरण संस्था समिति के अध्यक्ष डॉ. सुधीर जैन भोपाल व महामंत्री श्री अजित जैन भोपाल मे समिति के सभी सदस्यों की ओर से अपनी विनयांजली प्रस्तुत की है । भाव विज्ञान पत्रिका के सम्पादक श्री श्रीपाल जी दिवा ने भी भाव विज्ञान पत्रिका के सदस्यों के साथ अपनी श्रद्धाजंली प्रेषित की है।

श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल जी नहीं रहे

प्रसिद्ध समाजसेवी और बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी श्री दिगम्बर जैन मालवा प्रांतिक सभा के अध्यक्ष, जैन समाज के भीष्म पितामह श्री जैन रत्न सेठ श्री देवकुमार सिंह कासलीवाल जी का 16 फरवरी 2008 सन्ध्या 7 बजे निधन हो गया। आपके निधन से जैन समाज को अपूरणीय क्षति हुई है। आपके 88 वर्ष के जीवन में वे साधुसेवा, धर्म प्रभावना, तीर्थ रक्षा, गरीबों की सहायता हेतु सदैव तत्पर रहते थे। आपके नेतृत्व में बड़नगर में छात्रावास का नवीन भवन का निर्माण, सन्मति विद्या मंदिर की स्थापना व औषधालय का सुचारु संचालन सम्भव हुआ है।

आप अत्यंत सात्विक वृत्ति, शांतिप्रिय, सादगीप्रिय, दानपरायण, परोपकार, मृदुभाषी, उदारमना, देवशास्त्र गुरु के प्रति श्रद्धावान रहे। आप अष्टापद - बद्रीनाथ सिद्धक्षेत्र के स्वपन्न दृष्टा व निर्माण के प्रमुख सूत्रधार रहे।

बड़नगर, इन्दौर, उज्जैन आदि अनेक नगरों के समाज ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की है। भाव विज्ञान परिवार भी अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करता है।

अतिशय क्षेत्र डेरा पहाड़ी, छतरपुर पर
शीतकालीन वाचना सन् 2008

मानस्तंभ जिनबिम्ब स्थापना के अवसर
पर श्री प्रेमचंद, कुपीवाले

श्री कपूरचंद घुवारा, विधायक एवं अध्यक्ष, म.प्र. हस्तशिल्प
विकास निगम, भोपाल आशीर्वाद लेते हुए।

आचार्य श्री विद्यासागर पाठशाला, छतरपुर में कलश
स्थापना करते हुए श्री प्रेमचंद, कुपीवाले

पंचकल्याणक दमोह में गजरथ परिक्रमा में मुनि श्री के साथ
उद्योग मंत्री श्री जयंत मलैया एवं सांसद श्री चंद्रभान सिंह

मुनि श्री आर्जवसागर महाराज पंचकल्याक दमोह में
भगवान की दीक्षा संस्कार विधि सम्पन्न करते हुये

पंचकल्याणक महोत्सव दमोह में भक्तगणों का उमड़ता सैलाव

गजरथ परिक्रमा दमोह

रजि. क्रं. MPHIN21331/12/1/2007-TC

भगवान महावीर आचरण संस्था समिति

रजि.नं. : 01/01/01/17654/07

कार्यालय : एम-8/4 गीतांजलि काम्पलेक्स, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल फोन : 0755-2772945

भगवान महावीर आचरण संस्था समिति की नींव सन् 2004 में संतशिरोमणी आचार्य श्री 108विद्यासागर महाराज के परम प्रभावक शिष्य पूज्य मुनिश्री 108 आर्जवसागर महाराज के आशीर्वाद से हुई। इस समिति के गठन का मुख्य उद्देश्य एक ऐसे समूह को तैयार करना है जो कि जैन धर्म के कम से कम मूल नियमों का पालन करता हो (रात्रि भोजन त्याग, देवदर्शन आदि)।

यह संस्था जीव दया व अहिंसा के प्रचार के साथ-साथ पशु रक्षा हेतु गौशाला के संचालन में सहयोग तथा विभिन्न नगरों में पाठशालाओं को अपग्रेड करने के साथ-साथ संचालन में सहयोग करती है। यह संस्था गौशाला तथा पशु रक्षा करने वाली संस्थाओं में समर्पित व्यक्तियों का सम्मान भी करेगी। आप भी इस समिति की सदस्यता ग्रहण कर हमारे उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोग कर सकते हैं। सदस्यता ग्रहण करने हेतु आपको एक फार्म भरना होगा जिसमें जैन धर्मो के मूल नियमों के पालन हेतु शपथ पत्र पर हस्ताक्षर करने होंगे। यदि आप इस समिति के कानूनन सहयोगी बनना चाहते हैं तो निर्धारित शुल्क जमा कर यथानुसार सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं।

वर्ष 2004 से अब तक समिति को मुनिश्री आर्जव सागर महाराज द्वारा लिखित लगभग 10 पुस्तकों का प्रकाशन, पाठशालाओं के संचालन में सहयोग तथा मुनि संघों के प्रवास/चातुर्मास के दौरान अनेक सेवायें देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

अभी हाल ही में भोपाल से **भाव विज्ञान** पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ है इसका दूसरा अंक आपके हाथों में है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य जैन धर्म के अनुसार विज्ञान की प्रगति के बारे में बताना है। हमारे मन में आने वाले धार्मिक भावों को विज्ञान से जोड़ने वाली यह पत्रिका विशेष रूप से नयी पीढ़ी के मन की धार्मिक शंकाओं को दूर करने का प्रयास करेगी। समिति के समस्त सदस्यों को भाव विज्ञान पत्रिका नियमित रूप से निःशुल्क भेजी जावेगी।

सम्पर्क सूत्र :

महामंत्री	संयुक्त सचिव	कोषाध्यक्ष	उपाध्यक्ष	अध्यक्ष
अजित जैन	**अरविन्द जैन**	**अविनाश जैन**	**राजेन्द्र चौधरी**	**डॉ सुधीर जैन**
9893163047				9425011357

सदस्य -**पवन जैन, श्रीमती संगीता जैन**

Ö»ßæÙ ×ãUæßèÚU ¥æ¿ÚU‡æ â¢SÍæ âç×çÌ

संरक्षक

श्रीमती शीलरानी नायक, पनागर
श्री राजेश जैन रज्जन, दमोह
श्री सुनील कुमार जैन, सतना
श्री महावीर प्रसाद जैन, सतना
श्री राजेन्द्र जैन कल्लन, दमोह
श्री अजित जैन, भोपाल

आजीवन सदस्य

श्श्री मनोज जैन दालमिल, दमोह
श्री महेश जैन दिगम्बर, दमोह

सदस्य

श्रीमती मना जैन, भोपाल
श्री जिनेश जैन, भोपाल
श्री अनेकांत जैन, भोपाल
श्री योगेन्द्र जैन, रांची
श्री शांतिलाल वागडिया, जयपुर
श्री अमित लाल जैन, रांची
श्री संजीव जैन शाकाहारी, दमोह
श्री तरुण सरार्फ, दमोह
श्री पदम लहरी, दमोह

Öæß çß™ææÙ Âç˜æ·¤æ

परम संरक्षक

श्री गौतम काला, राँची
श्री वर्धमान विक्रमादित्य जैन, दैहरादून
श्री पदमराज होळल, दावणगेरे

संरक्षक

श्री विजय अजमेरा, रीवा
श्री केसी जैन, डि. एक्साइज आफीसर, छतरपुर

आजीवन सदस्य

श्री यू.सी. जैन, एलआईसी-दमोह
श्री जिनेन्द्र उस्ताद, दमोह
श्री नरेन्द्र जैन, सबलू दमोह
श्री निर्मल कुमार, इटोरिया
श्री संजय जैन, पथरिया दमोह
श्री अभय कुमार जैन, गुड्डे पथरिया, दमोह
श्री राजेश जैन हिनोती, दमोह
श्री निर्मल जैन इटोरिया, दमोह

नये सदस्य

श्री चंदूलाल दिपचंद काले, कोपरगांव
श्री पुनमचंद चंपालाल ठोले, कोपरगांव
श्री अशोक चंपालाल ठोले, कोपरगांव
श्री नितिन मदनलाल कासलीवाल, कोपरगांव
श्री चंपालाल दिपचंद ठोले, कोपरगांव
श्री अशोक पापड़ीवाल, कोपरगांव
श्री सुभाष भाऊलाल गंगवाल, कोपरगांव
श्री तेजपाल कस्तूरचंद गंगवाल, कोपरगांव
श्री सुनील गुलाबचंद कासलीवाल, कोपरगांव
श्री श्रीपाल खुशीलचंद पहाड़े, कोपरगांव
श्री शिखरचंद अशोक कुमार लोहाड़े, कोपरगांव
श्री प्रेमचंद कुपीवाले, छतरपुर

श्री चतुर्भुज जैन, सब इंजिनियर, छतरपुर
श्री प्रदीप जैन, इनकमटैक्स, छतरपुर
श्री एम.के. जैन, लघु उद्योग निगम, छतरपुर
श्री रतनचंद देवेन्द्र कुमार बस वाले, छतरपुर
श्री कमल कुमार जतारावाले, छतरपुर
श्री मुन्नाचंद जैन, छतरपुर
श्री देवेन्द्र डयोढ़िया, छतरपुर
अध्यक्ष, महिला मंडल, डेरा पहाड़ी, छतरपुर
अध्यक्ष, महिला मंडल शहर, छतरपुर
पंडित श्री नेमीचंद जैन, छतरपुर
डॉ. सुरेश बजाज, छतरपुर

पुण्यार्जक

सौजन्य से

स्वयं की विशाल गौशाला का लगभग 35 वर्ष से सफल संचालन एवं
जैन मंदिरों में मान स्तंभों के निर्माण एवं जिन बिम्बों के दान करने में सक्रिय भूमिका निभाने वाले

पदमराज जैन हुळल

223/1, एन.आर. रोड, म्यूनिसपल कालेज के पास, दावणगेरे-577001

दूरभाष : 08192-277220 276988 दुकान ; 276649 निवास, मोबा.: 98440 85908

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्रीमति सुषमा जैन द्वारा पारस प्रिंटर्स, 207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1, भोपाल से मुद्रित एवं एमआईजी-8/4, गीतांजली काम्प्लेक्स, कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल (म.प्र.) से प्रकाशित।

सम्पादक - श्रीपाल जैन 'दिवा' एल-75, केशर कुंज, हर्षवर्धन नगर, भोपाल-3 (म.प्र.)